भारत की आध्यात्मिक कथाएं

(अंग्रेजी से अनूदित)

सकलनकर्त्ता
चमन लाल

अनुवाद
नरेंद्र मोहन

चित्रांकन
पी० खेमराज

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

प्रथम संस्करण आश्विन 1906, अक्तूबर 1984

मूल्य 7.00 रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित।

विक्रय केन्द्र ● प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल) कनाट सर्कस, नई दिल्ली 110001
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड बालार्ड पायर, बम्बई 400038
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट कलकत्ता-700069
- एल० एल० ए० आडीटोरियम, 736 अन्नासलै, मद्रास 600002
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग अशोक राजपथ पटना 800004
- निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम 695001
- 10-बी, स्टेशन रोड, लखनऊ-226001
- स्टेट आर्किलाजिकल म्यूजियम बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन, हैदराबाद 500004

प्रबंधक भारत सरकार मुद्रणालय फरीदाबाद द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

अर्नेस्ट र्‌हीम ने "फेबिल्स, ईसप और अन्य कथाएं" नामक अपनी पुस्तक की भूमिका में सही ही लिखा है कि "हमें यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि विश्व की श्रेष्ठतम कथाओं का उद्‌भव ईसप से ही अथवा यूनान में ही नहीं हुआ, वस्तुतः इनका प्रारंभ भारत में हुआ। इस देश की हितोपदेश जैसी पुस्तकों में कथा के बीच कथा देखकर सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यहां कथाओं की परम्परा कितनी प्राचीन है।"

सृष्टि की रचना के समय स्रष्टा ने प्रत्येक राष्ट्र को कोई न कोई विशेषता प्रदान की। भारत भूमि को उसने विद्वत्ता प्रदान की। उपनिषद् तो भारत की विद्वत्ता का उज्ज्वल उदाहरण ही है। प्रस्तुत पुस्तक में संकलित कथाएं विद्वत्ता से परिपूर्ण हैं। इन कथाओं के पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वर में सच्ची आस्था से क्या-क्या चमत्कार हो जाते हैं। इन कथाओं से यह भी ज्ञात होता है कि सृष्टि के रचयिता हमें क्या संदेश देते हैं। सहिष्णुता और मानव मात्र के प्रति प्रेम भाव से क्या-क्या प्राप्त किया जा सकता है। प्रत्येक कथा उपदेशों से परिपूर्ण है। आज के युग में जब वातावरण में सर्वत्र भय व्याप्त है और परमाणु अस्त्रों के कारण मनुष्य भ्रमित हो रहा है, ईश्वर में आस्था की कथाएं पाठकों के मन में अदम्य साहस का संचार करेंगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

इनमें से अधिकांश कथाओं का संकलन और अनुवाद मैंने अपने मार्गदर्शन हेतु किया था क्योंकि संन्यासी को सदैव आत्म-सुधार की प्रक्रिया में रत रहना चाहिए। मुझे इसके लिए कोई श्रेय की भी कामना नहीं क्योंकि मधुमक्खी की भांति मैंने तो पुष्पों से मधु का संग्रह मात्र ही किया था।

मैं उन लेखकों और प्रकाशकों का भी हार्दिक धन्यवाद करता हूँ जिनकी कथाओं को मैंने इस संकलन में सम्मिलित किया है। स्वामी प्रभावानन्द कृत भागवत में से कुछ कथाओं को प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान करने के लिए दक्षिणी कैलीफोर्निया की वेदान्त सोसायटी का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ।

—रमा लाल

अनुक्रम

सत्य की महिमा

एक सत्यवादी और धर्मपरायण राजा था। उसकी राजधानी में यदि कोई साधारण व्यक्ति अनाज, कपड़ा या अन्य कोई चीज बेचने के लिए लाता और उसे सूर्यास्त से पहले न बेच पाता तो राजा उन चीजों को खरीद लेता था। जनता की भलाई के लिए राजा की यह प्रतिज्ञा थी जिसका वह हमेशा पालन करता था। सूर्यास्त होने के तत्काल बाद राजा के सेवक शहर में जाते और यदि वे किसी को बेचने लायक चीजें लिए बैठे देखते तो उससे पूछताछ करते और ठीक-ठाक मूल्य चुका कर उसका सारा माल खरीद लेते।

इस सत्यनिष्ठ राजा की सत्यप्रियता को परखने के लिए एक दिन धर्मराज स्वयं ब्राह्मण वेश में राजधानी में पहुंचे। उनके पास एक सन्दूक था जिसमें ऐसी फालतू और घरेलू चीजें पड़ी थीं जिन्हें कबाड़ समझ कर फेंका जा सकता था। वे इस सन्दूक को लेकर विक्रेता की हैसियत से बाजार में बैठ गए। लेकिन कबाड़ कौन खरीदता। जब सन्ध्या हो गई—तो राजा के सेवक रोज की तरह बाजार में गश्त लगाने लगे। बाजार में उन्हें वह ब्राह्मण सन्दूक लिए बैठा दिखाई दिया। राजा के सेवक उस के पास पहुंचे और पूछा कि क्या उसकी चीजें बिक गई हैं? ब्राह्मण द्वारा 'नहीं' में उत्तर देने पर राजा के सेवकों ने आगे पूछा कि वह सन्दूक में क्या चीज बेचने के लिए लाया है और उसका दाम क्या है? ब्राह्मण ने सन्दूक में पड़ा कबाड़ दिखा दिया और बताया कि इसका दाम एक हजार रुपये है। इस पर राजा के सेवक हंसे और उन्होंने कहा, 'इस रद्दी माल का, जिसकी कीमत एक पैसा भी नहीं है, भला कौन खरीदेगा?' ब्राह्मण ने शांत स्वर में उत्तर दिया, 'अगर कोई नहीं खरीदता तो मैं इसे घर ले जाऊंगा।' राजा के सेवक राजा के पास पहुंचे और सारी बात से उन्हें अवगत कराया। इस पर राजा ने उन्हें आदेश दिया कि वे ब्राह्मण को उसकी चीजें वापस न ले जाने दें।

उन्होंने आग्रहपूर्वक कहा कि चाहे बहुत भाव तय करके ब्राह्मण की चीजें उचित दाम पर खरीद ली जाएं।

राजा के सेवक उसी समय लौट पड़े और ब्राह्मण को उसकी चीजों के मूल्य के तौर पर सौ रुपये देने का प्रस्ताव रखा। ब्राह्मण ने एक हजार से एक पैसा भी कम स्वीकार करने से इनकार कर दिया। राजा के सेवकों ने इस प्रस्ताव को पांच सौ रुपये तक बढ़ाया पर ब्राह्मण ने इसे भी अस्वीकार कर दिया। ब्राह्मण के इस हठी व्यवहार से क्षुब्ध होकर कुछ सेवक राजा के पास दोबारा लौट आए और उनसे शिकायत की कि ब्राह्मण महान सनकी था, जिसके कचरा कबाड़ के सिवा कुछ नहीं है पांच सौ रुपये स्वीकार करने के लिए भी तैयार नहीं है। उन्होंने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा कि इन चीजों को खरीदने की कोई जरूरत नहीं है। राजा ने उन्हें अपनी प्रतिज्ञा की याद दिलाई और कहा कि मैं किसी भी वजह से अपने वचन से पीछे नहीं हटना चाहता। राजा ने आदेश दिया कि ब्राह्मण की चीजों को उसके द्वारा मांगी गई कीमत पर खरीद लिया जाए। राजा के सेवक अपने स्वामी की इस जिद पर हंसे और ब्राह्मण के पास लौट आए। उनके पास ब्राह्मण को उस रद्दी माल के बदले एक हजार रुपये देने के अलावा दूसरा कोई विकल्प नहीं था। ब्राह्मण ने वह राशि स्वीकार की और खुशी-खुशी चला गया। उधर राजा के सेवक गट्ठर को राजा के पास ले आए। राजा ने गट्ठर को महल में रखवा लिया।

उसी रात एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री जिसने बहुत अच्छी वेशभूषा और आभूषण पहन रखे थे और बहुत अच्छा शृंगार किया हुआ था, महल के मुख्य द्वार से बाहर निकली। राजा महल के बाहरी कमरे में बैठा हुआ था। सुंदरी को देखकर राजा ने उससे पूछा आप कौन हो? यहां किस लिए आई थी और अब कहां जा रही हो। उस स्त्री ने बताया कि "मैं लक्ष्मी हूं और चूंकि आप सत्यनिष्ठ और धर्मपरायण थे इसलिए शुरू से ही मैं आपके महल में निवास कर रही थी। लेकिन अब मालूम हुआ है कि कूड़े-कबाड़ के रूप में दरिद्रता मुख्य द्वार से राजमहल में प्रवेश कर आई है। ऐसे स्थान पर जहां दरिद्रता का वास हो मैं नहीं रह सकती। इसी कारण मैं आज इस राजमहल को छोड़कर जा रही हूं।" राजा ने उसे रोकने का कोई प्रयत्न नहीं किया और जाने दिया।

थोड़े समय बाद राजा ने एक सुन्दर युवक को महल से निकलते देखा। उसने युवक से भी वही प्रश्न किया। युवक ने उत्तर दिया कि वह दान का देवता है। राजा के सत्यनिष्ठ और धर्मपरायण होने के कारण वह प्रारम्भ से ही राजमहल में रह रहा था। लक्ष्मी के महल छोड़ जाने के बाद यहां वे साधन नहीं रहे जिससे कि राजा दान कर सके इसलिए वह वहीं जा रहा है जहां लक्ष्मी गई है। राजा ने कहा "यदि तुम जाना चाहते हो तो जाओ।"

इसके बाद एक और सुन्दर पुरुष आकृति महल से बाहर निकलती हुई दिखाई दी। राजा ने उससे भी वैसा ही पूछा तो उस आकृति ने कहा कि वह साक्षात सदाचरण है। उसने बताया कि "चूंकि आप एक सत्यवादी और गुणवान शासक हैं, इसलिए मैं आपके महल में उस दिन से निवास कर रहा था जिस दिन से आपने शासन की बागडोर संभाली थी। लक्ष्मी और दान के देवता द्वारा आपका घर छोड़ दिए जाने पर, उनकी अनुपस्थिति में आप सदाचरण पर कायम नहीं रह सकेंगे, इसलिए मैं भी उन्हीं का अनुसरण कर रहा हूँ।" राजा ने कहा, "ठीक है, जाओ।"

कुछ समय पश्चात् एक अन्य युवा आकृति महल के मुख्य द्वार पर दिखाई दी। राजा द्वारा पूछने पर उसने बताया, मैं यश का साकार रूप हूँ। जबसे आप सिंहासन पर बैठे तबसे मैं आप के महल में निवास कर रहा था। अब लक्ष्मी, दान-देवता और सदाचरण द्वारा महल छोड़ दिए जाने पर आप अपना यश नहीं बनाए रख सकेंगे इसलिए मैं जा रहा हूँ।" राजा ने उसे भी जाने दिया।

इसके थोड़े समय बाद एक अन्य युवक महल से बाहर निकला। राजा के पूछने पर उसने वही कहानी दोहरा दी। उसने राजा को बताया, मैं मूर्तिमान सत्य हूं और आपके शासन-काल के प्रारम्भ से ही मैं महल में ठहरा हुआ था। पर महल से लक्ष्मी दान सदाचरण और यश के चले जाने के बाद मैं भी उन्हीं का अनुसरण कर रहा हूं। यह सुनकर राजा ने युवक से कहा 'सत्य की खातिर ही मैंने उन सभी देवताओं को जिनका सत्य ने उल्लेख किया है, अपने अपने रास्ते जाने दिया था। पर चूंकि सत्यनिष्ठा को मैंने कभी नहीं छोड़ा इसलिए न्यायसंगत यही है कि सत्य मुझे छोड़कर न जाए।" राजा ने उसे बताया कि उसने

जाहिर में यह घोषणा करवा रखी थी कि राजधानी में जो भी व्यक्ति कोई चीज़ बेचने के लिए लाएगा और सूर्यास्त से पूर्व उसे बेच नहीं पाएगा, उसके सारे सामान को राजा स्वयं खरीद लेगा। राजा ने सत्य से आगे कहा—'आज ही एक ब्राह्मण कुछ कबाड़ बेचने के लिए ले आया था जिसकी कीमत एक पैसा भी नहीं था पर केवल सत्यनिष्ठा की खातिर मैंने दरिद्रता का प्रतीक यह रद्दी माल एक हजार रुपया मूल्य चुका कर खरीद लिया।' राजा ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, 'इस पर लक्ष्मी मेरे पास आई और मुझसे बोली कि चूंकि दरिद्रता ने महल में डेरा डाल लिया है, इसलिए वह यहां नहीं रहेगी। इसी कारण लक्ष्मी और उसकी संगति में अन्य देवता एक-एक करके मुझे छोड़ कर चले गए हैं। इस सबके बावजूद मैं अपनी प्रतिज्ञा पर अटल हूँ।' यह पता चलने पर कि केवल सत्य की खातिर राजा ने अन्य सभी देवताओं को जाने की अनुमति दे दी थी, सत्य ने अपना विचार बदल लिया और महल में रहने का निर्णय लिया।

थोड़ा ही समय बीता होगा कि धर्म राजा के पास लौट आया। राजा के पूछने पर उसने बताया कि वह कौन है। उसने कहा कि आदमी नैतिक तौर पर कितना ही बड़ा दानशील और धार्मिक क्यों न हो उसे सत्यनिष्ठा के बिना प्रतिष्ठा नहीं मिल सकती। उसने अपने निर्णय के बारे में बताया कि जहां सत्य है वहीं वह ठहरेगा। राजा ने उसके निर्णय का स्वागत किया।

इसके बाद सदाचरण राजा के पास आया। राजा के पूछने पर उसने अपना परिचय दिया और कहा कि सदाचरण वहां ठहर सकता है जहां सत्यवादिता है। कोई कितना ही दानवीर और धर्मात्मा क्यों न हो सत्य के अभाव में उसके नैतिक होने का प्रश्न ही नहीं उठता। सदाचरण ने आगे कहा कि चूंकि राजा में सत्य का निवास है, इसलिए वह भी राजा के पास रहेगा। राजा ने उसका स्वागत किया।

थोड़े समय बाद दान का देवता भी लौट आया। राजा के पूछने पर उसने भी अपना परिचय दिया और कहा कि दान वहां रह सकता है जहां सत्य हो। चाहे कोई कितना ही धर्मी हो, वह तब तक दानशील नहीं हो सकता जब तक कि वह सत्य के प्रति समर्पित न हो। दान देवता ने राजा की सत्य के प्रति निष्ठा के लिए उसकी प्रशंसा की और बताया कि



उसने राजा के पास लौट आने का निर्णय किया है। राजा ने कहा—'ठीक है।' और महल में उसके प्रवेश का स्वागत किया।

तब धर्मराज स्वयं ब्राह्मण के वेश में राजा के सामने उपस्थित हुए। राजा द्वारा उसी तरह पूछे जाने पर, उन्होंने राजा को बताया कि वह धर्म के देवता हैं तथा आगे कहा कि उन्होंने ही राजा को एक हजार के मूल्य पर पत्थर बेचा था। उन्होंने स्वीकार किया कि राजा ने अपने सत्यनिष्ठा के गुणों के कारण उन्हें जीत लिया है और अब इस वेश में वह उनकी इच्छानुसार वरदान देने के लिए आए हैं। उन्होंने राजा से पूछा कि वह बताएं कि वे उनके लिए क्या कर सकते हैं। राजा ने धर्मराज के प्रति आभार व्यक्त किया और कहा कि उसे कुछ नहीं चाहिए।

इस कथा से यह बात बिना किसी सन्देह के स्पष्ट हो जाती है कि जहां सत्य है वहां अन्य सभी वरदान स्वयमेव और निरन्तर उपस्थित रहते हैं। इस गुण के सम्पर्क में यदि किसी समय धन-सम्पत्ति, दान, नैतिकता और यश का अभाव हो भी जाए तो हतोत्साहित नहीं होना चाहिए। सत्य का मार्ग न छोड़ने से ये सभी अपने आप निश्चित रूप से लौट आते हैं। यदि ये पुनः प्राप्त नहीं भी होते, तो भी मनुष्य की कोई हानि नहीं होती बल्कि उसे सर्वोच्च लाभ—सत्यनिष्ठा के रूप में अवश्य प्राप्त होता है। इसलिए ईश्वरीय कृपा या परमानन्द के जिज्ञासु को किसी भी हालत में सत्य को छोड़ना नहीं चाहिए बल्कि सत्य का निःस्वार्थ भाव से निरन्तर और स्वेच्छापूर्वक पालन करना चाहिए।

सत्य या सत्यवादिता—सत्य बोलना, श्रेष्ठ गुणों का अर्जित करना और सदाचरण सत्य या सत्यवादिता के ही लक्षण हैं। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है —

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥26॥
यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥27॥
(7वां अध्याय)

हे अर्जुन! सद्भाव, साधुभाव में और मांगलिक कर्मों में सत् शब्द का प्रयोग किया जाता है। हे अर्जुन! यज्ञ, तप और दान में जो स्थिति है

वह 'सत' शब्द से कही जाती है और उसके निमित्त जो कर्म किए जाते हैं वे भी सद् कहलाते हैं।

हिन्दी की एक लोकप्रिय उक्ति इस प्रकार है—'हे ईश्वर के भक्त ! सत्य मार्ग को किसी भी हालत में छोड़ना नहीं चाहिए। सत्य को छोड़ देने से तुम्हारा श्रेय निश्चित रूप से नष्ट हो जाएगा। सत्य के प्रति एकनिष्ठ भाव से अस्थाई तौर पर छिन गई धन-सम्पत्ति वापस मिल जाती है।'

सीता की अग्नि-परीक्षा

राम सीता को देखने के लिए उत्कंठित हो उठे थे। वे उस मधुरता की अपने हृदय में पुनः अनुभूति करना चाहते थे जो मधुरता उनसे उस दिन छिन गई थी जब वे सोने के हिरण को पकड़ने के लिए निकले थे। पर वे मात्र आवेग में बह जाने वाले या क्षणिक और अकस्मात पैदा हो जाने वाली इच्छाओं के शिकार हो जाने वाले नश्वर जीव मात्र नहीं थे। उन्होंने सोचा कि सीता के साथ अपने पुनर्मिलन को निरापद बनाने के लिए यह आवश्यक है कि यह मिलन सभी के सामने हो और पत्नी के सम्मान और उनके प्रति उसकी निष्ठा का प्रमाण सभी को मिले जिससे कि जनमानस में सीता की सच्चरित्रता के बारे में कोई भ्रम पैदा न हो। सीता का हित भी इसी बात में है कि प्रजाजनों का भी उनके प्रति प्रेम और अटूट विश्वास हो। राम की प्रसन्नता भी इसी बात में हो सकती थी कि सीता को संदेह और भर्त्सना से परे और ऊपर समझा जाए।

परन्तु सबसे पहला काम जो उनके सामने था, उसका इन प्रश्नों से कोई सम्बन्ध नहीं था। इस समय वे एक विजेता सेना का नेतृत्व कर रहे थे। उनका पहला दायित्व यह था कि नगर को, नगर की स्त्रियों, बच्चों तथा धन-सम्पत्ति को अपनी ही सेनाओं द्वारा लूट-पाट से सुरक्षित रखें। इसलिए उन्होंने तत्काल विभीषण को लंका का राजा घोषित किया और उन्हें गद्दी पर बठा दिया। तत्पश्चात् उन्होंने गोपनीय ढंग से हनुमान को अपने पास बुलाया और उनसे कहा कि वे नए राजा की अनुमति प्राप्त करके नगर में प्रवेश करें और स्वयं सीता को उनकी विजय के बारे में बताएं।

उन्होंने विभीषण से औपचारिक रूप से प्रार्थना की कि वे कौशल की रानी को स्वयं अपने साथ उनकी उपस्थिति में लाएं। राज्य के ऐसे समारोहों के अनुरूप सीता को राजसी वेश भूषा में तथा हीरे-जवाहरात पहने हुए ही आना था। सीता का प्यार से भरा हुआ हृदय उसे प्रेरित कर रहा था कि वह इसी हालत में, अपने कारावास के कपड़ों में, उड़कर अपने पति के चरणों में पहुंच

जाए। परन्तु विभीषण ने उनके पति द्वारा अभिव्यक्त इच्छा की विनम्रतापूर्वक याद दिलाई और सीता ने तत्काल राजसी वेशभूषा पहनना स्वीकार कर लिया। सचमुच, राजकुमारियों का जीवन पथ बहुत कठिन होता है। एक-एक पग उठाती हुई, अपने हृदय के आवेग को थामे, सीता अपने पति के पास जाने के लिए आगे बढ़ रही थी।

रानी तैयार होकर उस पालकी में बैठी जिस पर लाल और सुनहरी झालरें लटक रही थीं। इस पालकी में बैठकर उन्हें राम के पास पहुंचना था। आगे आगे चल रहे विभीषण को उनके आगमन की घोषणा करनी थी। नगर के प्रवेश द्वार पर यह प्रार्थना की गई कि वे पालकी से उतर कर शिविर तक का रास्ता पैदल तय करें। सीता इसका आशय न समझ सकी। राम के दर्शन करने के विचारों में वे इतना खोई हुई थी कि इन छोटी छोटी बातों पर सोचने की उन्हें फुरसत नहीं थी। सीता पालकी में अपनी जगह से उठी और चौड़े रास्ते पर बाहर आ गई। रास्ते के दाएं और बाएं, उन्हें घेरे हुए सैनिक खड़े थे। सामने राम विराजमान थे—गम्भीर और भव्य मुद्रा में, सभासदों के साथ। सभी की आंखें सीता पर ठहरी हुई थीं। उन्हें बचपन से लेकर अब तक खुले आम नहीं देखा गया था। विभीषण को स्वभावतः महसूस हुआ कि इससे, संकोचशील और संवेदनशील रानी को उलझन होगी। इसलिए वे भीड़ को चले जाने का आदेश देने ही वाले थे जिससे कि एकांत में राम और सीता का मिलन हो सके, तभी राम ने उन्हें हाथ के संकेत से रोक दिया। उन्होंने आदेश दिया "सभी को बैठे रहने दिया जाए। यह ऐसे अवसरों में से एक है जब समस्त ब्रह्माण्ड स्त्री के लिए ओढ़नी बन जाता है और निष्पाप भाव से कोई भी उसे देख सकता है।"

इस बीच, सीता धीमी और राजसी चाल में चलती हुई बहुत समीप आ गयी थी। ऐसा लग रहा था मानो उनकी आंखें अपने पति के मुख की प्रत्येक भंगिमा और गति को भाप रही हों। राम सीता के स्वागत में उठे, पर सभी लोगों ने देखा कि वे सीता की ओर नहीं देख रहे, बल्कि अपना सिर को झुकाए हुए आंखों को नीचे किए हुए खड़े हैं। रानी कितनी सुन्दर थी। वे कितनी भव्य और सौम्य दिख रही थीं। गहनों आभूषणों में सजी होने पर भी, उन्हें देखने पर साफ लगता था कि वे सरल और कठोर हृदय वाली स्त्री हैं, एक विनम्र और प्यारी पत्नी हैं, और मन भर से गृहस्था र

लिए आदर्श और मुक्त आचार हों में साम्य हो। सीता में महान स्त्रीत्व के गुणों के प्रकटीकरण को देखकर उस दिन भीड़ में प्रत्येक व्यक्ति आश्चर्य और सम्मान से स्तब्ध खड़ा था।

पति के भवन पर उनसे कुछ कदम दूर रानी सीता अपने स्थान पर स्थिर खड़ी थीं। राम ने दृष्टि ऊपर उठाई और सघन तथा गंभीर स्वर में कहा— रावण को पूरी तरह से पराजित किया जा चुका है और मारा जा चुका है। इस तरह अयोध्या के सम्मान को पूरी तरह रक्षा हो गई है। अब यह रानी जिस रावण ने उनसे पति से विलग कर लिया था पर निर्भर करता है कि वह यह चुनाव करें कि उन्हें किसके संरक्षण में और किस व्यवस्था में रहना है।' सीता को सीधे-सीधे सम्बोधित करते हुए और पल भर के लिए अपने ही कोमल भावों के बहाव में बहते हुए उन्होंने कहा— 'हे कामलागी आपकी इच्छाएं सम्पूर्णतः पूरी की जाएंगी। पर यह उचित और समय नहीं होगा कि रावण के महल में रहने के कारण जिसका नाम कलुषित हो चुका हो, उसे पुनः उसके पुराने स्थान पर आसीन कर लिया जाए।'

इन शब्दों को सुनकर रानी अप्रत्याशित आश्चर्य और दुःख में डूबी घायल व्यक्ति के समान खड़ी की खड़ी रह गई। तत्पश्चात् उन्होंने स्वाभिमान से अपना सिर ऊपर उठाया। यद्यपि उनके होंठ कांप रहे थे और आंसू बह रहे थे, तो भी उनकी निष्कंप आवाज गूंज उठी 'मेरे चरित्र के बारे में, सचमुच भ्रांत धारणा बन सकती है। लगता है राम भी मेरी उज्ज्वलता के बारे में संदेहशील हैं। तब तो मेरे लिए एक विकट समस्या उत्पन्न हो गई है। मेरे स्वामी ने यदि मुझे पहले बता दिया होता, जब मैं लंका में बन्दी थी कि वह मेरे लिए नहीं बल्कि अयोध्या के सम्मान की खातिर मेरा उद्धार करेंगे तो मैंने उन्हें इस प्रयत्न करने से सचमुच, रोक दिया होता। मेरे लिए वहीं मर जाना कहीं अधिक बेहतर होता पर मैं सोचती थी कि राम मेरे प्रति प्रेम से प्रेरित होकर इस दिशा में प्रयत्न कर रहे हैं। लक्ष्मण! जाओ और मेरे लिए चिता तैयार करो। मेरे विचार में जो विपदा मुझ पर आ पड़ी है उसका एकमात्र हल यही है।'

संरक्षकों और व्यवस्था के नियामकों को सीता का यही उत्तर था। लक्ष्मण ने क्षोभ और आश्चर्य से भाई की ओर देखा, लेकिन वहां से कोई संकेत न मिलने पर वे चिता तैयार कराने लगे। मुख मुद्रा से ऐसा प्रतीत

होता था कि किसी गंभीर समस्या में हैं इसलिए किसी में साहस नहीं था कि कुछ कह सके। सीता अपने स्थान पर वैसे ही खड़ी थीं, उनकी आंखों में आंसू बह रहे थे और वह धैर्य से प्रतीक्षा कर रही थीं।

जब लकड़ियां इकट्ठी हो गई और अग्नि प्रज्ज्वलित हो गई तो माता ने पति की, जो सिर झुकाए अपने स्थान पर खड़े थे, तीन बार परिक्रमा की। लोगों को स्पष्ट दिख रहा था कि उनका हृदय मधुरता से परिपूर्ण है। ऐसा लगता था मानो अग्नि के समक्ष खड़ी होकर प्रार्थना कर रही हों। उन्होंने कहा "हे अग्नि देवता! तुम संसार के साक्षी हो, मेरी रक्षा करना। मैं सदैव राम के प्रति सच्ची रही हूं। हे पवित्र अग्नि शिखाओ! मुझे अपने में आत्मसात कर लो, हे पवित्रता के देवता! मुझे अपनी शरण में ले लो।'

यह कह कर सीता ने तीन बार चिता की परिक्रमा की और संसार से विदा लेकर निर्भयता से चिता में प्रवेश कर गई। धधकती हुई अग्नि में प्रवेश करते हुए सीता ऐसे लग रही थीं मानो स्वर्ण वेदिका पर सोना रखा जा रहा हो। चारों तरफ खड़े लोग रोने चिल्लाने लगे। लेकिन यह क्या! जैसे ही सीता के चरणों ने चिता का स्पर्श किया, आकाश से राम के महिमा गान की मधुर ध्वनियां गूंजने लगीं। इन ध्वनियों से ऐसा प्रतीत होता था मानो अलौकिक पुरुष का अपनी अलौकिक शक्ति से मिलन हो रहा हो। उसी समय अग्नि के बीच से स्वयं अग्नि देवता सीता से मिलने के लिए आगे बढ़े। अपने दाएं हाथ से सीता को थामे हुए उन्हें राम के सम्मुख ले गए। राम का मुखमण्डल प्रसन्नता से दमक उठा था। अग्नि देवता ने राम को सीता सौंपते हुए कहा—'हे राम! सीता आप की ही है, आपके प्रति मन से वाणी से और कर्म से निष्ठावान और सच्ची है। मेरा अनुरोध है कि आप इन्हें स्वीकार करें। सीता आपकी ही है।"

राम ने माता को स्वीकार करते हुए कहा—"प्रिये! सचमुच, मेरे मन में तुम्हारे बारे में कोई सन्देह नहीं था पर सभी लोगों की उपस्थिति में तुम्हें निर्दोष सिद्ध करना आवश्यक था। सचमुच तुम मेरी ही हो। यह कभी मत सोचो कि तुम मुझ से अलग हो सकती हो। तुम मेरी ही हो और मैं तुम्हारा परित्याग कभी नहीं कर सकता, जैसे कि सूर्य अपनी किरणों का त्याग नहीं कर सकता।"

उन्हें इस प्रकार का दृश्य देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो अग्नि देवता द्वारा उनका पुन विवाह हुआ हो। सभी उपस्थित लोगों को प्रतीत लगा था मानो स्वर्ग के द्वार खुल गए हों और रथ में बैठे हुए दशरथ सीता और राम को आशीर्वाद दे रहे हैं और अयोध्या के राजा और रानी के रूप में उनका अभिनन्दन कर रहे हों।

यह सच था कि उनके वनवास के चौदह वर्ष समाप्त हो गए थे और जो दृश्य उन्होंने अभी देखा था उससे स्पष्ट था कि उनके पिता की आत्मा को तब तक शान्ति नहीं मिल सकती जब तक कि वे सिंहासनारूढ़ नहीं हो जाते। इसलिए राम अब अयोध्या पहुंचने के लिए लालायित थे। एक-दो दिन लंका में रहने और पुरस्कार बांटने के बाद वे सीता के साथ पुष्पक विमान द्वारा आकाश मार्ग से शीघ्र ही अयोध्या पहुंच गए।

कहते हैं उन दिनों रामराज्य में किसी को भी कोई कष्ट नहीं था। जंगली जानवरों और रोगों से भी किसी को कोई भय नहीं था। डाकुओं के डर से लोग पीड़ित नहीं थे। सभी लोग सुरक्षित थे। किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं था। वृद्ध लोगों को बच्चों के अन्तिम संस्कार करने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। लोग प्रसन्न थे। वे एक दूसरे से ईर्ष्या नहीं करते थे। पेड़-पौधे हमेशा फल और फूलों से लदे रहते थे। इच्छा करने पर वर्षा हो जाती थी और सुखद हवाएं बहती थीं। राम के राज में सभी लोग सज्जन और सच्चे थे तथा उनके राज्य में सौभाग्य के सभी चिह्न थे।

यदि यह कहानी इस प्रकार समाप्त हो गई होती तो कितना सुखद होता। महान कवि वाल्मीकि ऐसा ही चाहते थे। शायद सैकड़ों वर्षों तक लोग इस कथा को इसी रूप में जानते रहते। पर बाद में किसी समय किसी अज्ञात कवि द्वारा जो उत्तर कथा लिखी गई वह आश्चर्य-जनक रूप से दुखद है। यह उत्तर कथा बताती है कि सीता की भयानक अग्नि परीक्षा लोगों को सन्तुष्ट करने के लिए पर्याप्त नहीं थी। इसका कारण शायद यह भी था कि यह घटना बहुत दूर घटी थी। कानाफूसी और संदेह जिसकी कल्पना राम ने पहले ही कर ली थी, अन्ततः चारों ओर फैल गया और जब उन्होंने इस सम्बन्ध में सुना तो वह समझ गए कि नियति का विरोध व्यर्थ है सीता को और उन्हें अलग

सीता की अग्नि परीक्षा



अलग रहना ही होगा। प्रजाजनों के हित के लिए राजा को हर प्रकार के बलिदान के लिए तैयार रहना चाहिए और उन्हें महसूस हुआ कि यह जनहित में भी नहीं है कि राजा के आचरण के सम्बन्ध में गलत धारणा प्रचलित रहे। उनका संकल्प यद्यपि धीरोचित था तथापि राम अपने में इतना विश्वास नहीं जुटा पाए कि वे सीता को स्वयं अन्तिम विदाई दे सकें। अतः उन्होंने लक्ष्मण के संरक्षण में सीता को जिनकी चिरकाल से तीर्थ यात्रा की इच्छा थी गंगा के दूरवर्ती तट पर स्थित वाल्मीकि के आश्रम में भेज दिया। यहां लक्ष्मण को राम का वियोग सन्देश देना था और उनसे विदा लेनी थी।

इस अवसर पर सीता का एकाकीपन कितना दुःखद था। यह संतोष उन्हें सचमुच था कि वे अपने पति के भाव को समझती हैं और वे भी उन्हें समझते हैं। एक दूसरे के प्रति उनके जो अन्तिम शब्द थे उनकी वजह से उनका अलगाव एक पवित्र प्रतिज्ञा को पूरा करने के समान था। सीता भी यह जानती थी कि उनका वियोग हमेशा के लिए है। वे आत्मिक रूप से हमेशा उनके साथ रहेंगी पर दोनों को ही यह आशा नहीं थी कि वे एक दूसरे को देख पाएंगे।

ज्ञानी और पिता-तुल्य वाल्मीकि के आश्रम में रहते हुए बीस साल बीत गए। सीता के जुड़वां बेटे दयालु और प्यारे दादा के रूप में वाल्मीकि का सम्मान करते थे। बीस साल बीत जाने के बाद वाल्मीकि के आश्रम में यह समाचार पहुंचा कि अयोध्या में यज्ञ समारोह होगा। तब तक वाल्मीकि, रामायण की रचना कर चुके थे और राम के बेटों—लव और कुश को रामायण की शिक्षा दे चुके थे। उन्होंने निश्चय किया कि वे लड़कों को अयोध्या ले जाएंगे जहां वे यज्ञ के अवसर पर रामायण गाकर सुनाएंगे।

अभी रामायण का गायन समाप्त भी नहीं हुआ था कि राम को अनुभव होने लगा कि ये लड़के उन्हीं के पुत्र हैं। रामायण के गायन में कई दिन लग गए थे पर राजा और उनके सलाहकार अंत तक सुनते रहे थे। तब लम्बी सांस लेते हुए राम महान वाल्मीकि की ओर मुड़े और उन्होंने कहा— कितना अच्छा होता अगर सीता यहां होती। लेकिन वह अपने सतीत्व की दूसरी परीक्षा के लिए कभी सहमत नहीं हो सकती।

मैं उससे पूछूंगा। वाल्मीकि ने उत्तर दिया। वे पति-पत्नी को मिलाना और उन्हें देखना चाहते थे।

राम के आश्चर्य की सीमा नहीं रही जब यह संदेश पहुँचा कि सीता अगले दिन खुले आम अपने सतीत्व की परीक्षा देने के लिए सहमत है—इस बार अग्नि परीक्षा द्वारा नहीं बल्कि शपथ लेकर।

सुबह हुई। राजा उनके सभी मंत्री और सेवक राज सभा में बैठे थे। विशाल भीड़ जमा थी जिसमें विभिन्न स्तरों के लोग थे जो देश के सभी भागों से सीता की परीक्षा देखने के लिए आए थे। वाल्मीकि का अनुसरण करती सीता सभा में दाखिल हुई। वह पूरी तरह पर्दे में थीं, उनका सिर झुका हुआ था हाथ जुड़े हुए थे, आंखों में आंसू थे और उनका सारा ध्यान राम पर एकाग्र था। सभी दर्शकों में प्रशंसा और खुशी की लहर दौड़ गई। उनमें से कोई भी यह कल्पना नहीं कर सकता था कि निकट भविष्य में क्या होगा।

वाल्मीकि ने जैसे ही रानी को राम के और सभा के सामने प्रस्तुत किया और राम ने सीता की ओर मुड़कर सभा के सम्मुख निष्ठा और सतीत्व की शपथ लेने के लिए कहा, तभी सभी लोगों ने देखा कि [illegible] और सुगंधित समीर बहने लगी है जो कि देवताओं की निकटता का [illegible] है। उपस्थित दर्शकों में से कोई भी इस बात के लिए तैयार नहीं [illegible] राम के [illegible] का प्रभाव इस प्रकार होगा।

स्वाभिमानी, पर विनम्र आत्मा के बल पर सीता ने सब [illegible] या माधुर्य और समर्पण का आदर्श बनी रह कर, उसने बिना [illegible] शिकायत के एकाकीपन के बीस वर्ष झेले थे। लेकिन अब [illegible] हो चुका था। "हे दिव्य मां!" उसने चिल्ला कर कहा, "[illegible] देवी हूं। अगर यह सच है कि मैंने राम के सिवा [illegible] पुरुष का ध्यान नहीं किया तो मुझे पतिव्रता के [illegible] में ले लो। अगर मैंने मन से, वचन से कर्म से [illegible] मगल कामना की है तो हे मां, मुझे अपनी शरण में ले लो।" [illegible] साथ गूंजी तभी एक आश्चर्यजनक घटना हुई। [illegible] मे फट गई जिसमें से जवाहरात से जड़ा हुआ [illegible] स्वामी नाग ने अपने सिर पर उठाया हुआ था, [illegible] पर पृथ्वी मां विराजमान थीं जो अपने [illegible] उसकी ओर हाथ फैलाए हुए थीं। पृथ्वी [illegible] धरती में समाने लगा। यह दृश्य देखकर देवता [illegible]

आकाश महल में मंगल ध्वनियां सुनाई देने लगीं 'सीता धन्य है, सीता धन्य है।' जैसे ही सीता और पृथ्वी माता लोगों की दृष्टि से ओझल हुईं सभी कहते हैं समस्त ब्रह्माण्ड में एक पल के लिए पवित्र सन्नाटा छा गया।

एक हृदय ऐसा था जिसके लिए यह शान्ति सह्य नहीं थी। वह हृदय राम का था जो दुःख से टूट गया था। जैसे सीता उनके प्रति सच्ची थी वैसे ही वे भी सीता के धरती में समा जाने के बाद सच्चे रहे। ऐसे सभी उत्सवों के लिए जिनमें पत्नी की उपस्थिति आवश्यक था उन्होंने अपनी पत्नी की स्वर्ण प्रतिमा स्थापित कर ली थी और उसी की उपस्थिति में वे सभी राजकीय कार्यों का संचालन करते थे। इस प्रकार समय बीतता गया और वह अन्तिम क्षण भी आ गया जिसे टाला नहीं जा सकता था। तब राम और उनके भाइयों ने संसार से विदा ली और अयोध्या के बाहर नदी किनारे पहुंच कर वे अपने दिव्य शरीरों में प्रविष्ट हो गए।

इस प्रकार युग बीत गए और उन दिनों की कथा स्मृति आज भी संसार में विद्यमान है।

—सिस्टर निवेदिता

निष्ठा, भक्ति और समर्पण

एक दूध बेचने वाली नदी के दूसरी तरफ रहने वाले एक ब्राह्मण को दूध पहुंचाया करती थी। नौका के चलने का कोई नियत समय न होने के कारण उसे प्राय दूध पहुचाने मे देर हो जाती थी। एक बार जब वह देर से पहुची तो ब्राह्मण ने उसे फटकारा। इस पर वह बेचारी स्त्री बोली "म क्या कर सकती हू? मैं अपने घर से तो सुबह ही चल पडती हू पर नदी के किनारे काफी समय तक मुझे नौका तथा अन्य यात्रियो की प्रतीक्षा करनी पडती है।' ब्राह्मण ने कहा, "ईश्वर का नाम लेकर तो लोग भवसागर के पार उतर जाते ह तुम इस छोटी सी नदी को भी पार नही कर सकती?' वह सरल हृदया स्त्री नदी पार करने के इस आसान उपाय को जानकर बहुत प्रसन्न हुई। अगले दिन से ब्राह्मण को प्रात काल ही दूध मिलने लगा। एक दिन ब्राह्मण ने उस स्त्री से पूछा क्या कारण है कि आजकल तुम्हें यहा पहुचने म कभी देर नही होती?' उसने कहा "आपके कहने क अनुसार मैं ईश्वर का नाम लेती हुई नदी पार कर लेती हू और अब मुझे नाविक के इन्तजार में खडा नही रहना पडता।' ब्राह्मण को इस बात पर विश्वास नही हुआ और उसने कहा 'क्या तुम मुझे दिखा सकती हो कि तुम नदी कैसे पार करती हो?" वह स्त्री उसे अपने साथ नदी के तट पर ले आई और पानी पर चलने लगी। स्त्री ने जब पीछे मुडकर देखा तो उसने ब्राह्मण को बहुत परेशान पाया। उसने कहा महाराज! यह क्या बात है कि आप मुह से ईश्वर का नाम ले रहे ह और हाथ से अपने कपडा को भीगने से बचा रहे है, क्या आपको ईश्वर पर पूरा भरोसा नही है? ईश्वर के प्रति सम्पूण समपण और अटूट आस्था ही सभी चमत्कारी कार्यों के मूल में स्थित है।'

—श्री रामकृष्ण



कृष्ण का जन्म

राजा कंस बहुत बलवान और अत्याचारी [illegible]
बहन थी देवकी, जिसे वह बहुत [illegible]
के साथ हुई थी। अपने भ्रातृ-स्नेह [illegible]
दान उपहार दे उन दोनों को लिए और [illegible]
के बाद, वह उनके रथ को स्वयं हाँकेगा।

समय आने पर उसने अपना [illegible]
भाग्य पर इठला रहे थे कि [illegible]
रहा है। रास्ते में लोग उनका [illegible]
मना रहे थे। सब ओर [illegible]

ऐसे ही उल्लासमय [illegible]
वाणी सुनाई दी—'ओ मूढ़, [illegible]
ये उसी की कोख का [illegible]
यह सुनकर, वह [illegible]
समय तलवार म [illegible]
वसुदेव बीच में [illegible]
उनकी नवविवाहित [illegible]
आठवां पुत्र [illegible]
प्रत्येक बच्चे [illegible]
चाहे [illegible]

[illegible]
उन्होंने [illegible]
कंस का [illegible]
और [illegible]
का और [illegible]

[illegible]

ने वसुदेव और देवकी को कारागार में डालने का आदेश दिया। परमपिता परमात्मा के ध्यान में ही उन्हें आनन्द मिलता था। इसलिए वे दोनों अपने हृदय की गहराइयों से निष्ठापूर्वक उस ईश्वर से यह प्रार्थना करते थे कि वह उनके बच्चे की रक्षा करें। इस प्रकार सच्चे मन से प्रार्थना में लीन वे समाशून्य हो गए। अचेतावस्था के अंधकार में उन्हें ऐसा अनुभव हुआ मानो एक प्रकाश पुंज कौंध गया हो। उस प्रकाश पुंज में दुःख के घन काले बादल तिरोहित हो गए और साथ ही विगत कुछ वर्षों की घनीभूत पीड़ा भी समाप्त हो गई। आनन्द स्वरूप परमात्मा ने उन्हें दर्शन दिए और अपनी सौम्य मुस्कराहट से उन्हें प्रसन्न करते हुए मधुर शब्दों में उनसे कहा—अपनी आंखें खोलो और अपने पुत्र के रूप में जन्म लेते हुए मुझे देखो। पिता! गोकुल में रहने वाले अपने परम मित्र राजा नंद के पास मुझे ले चलो। उनकी पत्नी रानी यशोदा ने अभी-अभी पुत्री को जन्म दिया है। उस पुत्री के स्थान पर मुझे रख कर पुत्री को काल कोठरी में ले आओ। मुझे यशोदा की गोद में रख आना जो इस समय सोई हुई होगी। आप निस्संकोच इस कार्य को सम्पन्न करो।

इस प्रकार भगवान श्री कृष्ण का प्रादुर्भाव राजा कंस की काल कोठरी में हुआ *जिन्होंने आगे चल कर मानवता को अत्याचार की बेड़ियों से मुक्त किया।*

देवकी ने अपने पुत्र के सुन्दर मुख को चूमा। वह भूल गई कि पुत्र का प्यार खतरा है। लेकिन वसुदेव को दिव्य दर्शन के समय की सभी बातें याद थीं। उसने बच्चे को छाती से लगाया और जैसे ही वह जेल छोड़ने के लिए तैयार हुए उनकी बेड़ियां टूट गईं और जेल के दरवाजे खुल गए। उन्होंने बाढ़ से उफनती यमुना नदी पार की और बिना किसी खतरे के यशोदा की नवजात कन्या से अपने पुत्र को बदल लाए। लौटते ही उन्होंने देवकी की गोद में कन्या को लिटा दिया तभी जेल के दरवाजे बंद हो गए और उन्हें हथकड़ियां लग गईं।

कंस ने प्रातःकाल जब कन्या के जन्म के बारे में सुना तो वह तत्काल उसे देखने के लिए काल-कोठरी में आया। वसुदेव ने उससे प्रार्थना की कि वह बच्ची को छोड़ दे क्योंकि कन्या से किसी प्रकार का खतरा नहीं हो सकता। पर कंस ने उनकी प्रार्थना पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। बच्ची को पैरों से पकड़े हुए वह उसे एक पत्थर पर मारने ही वाला था कि तभी एक अद्भुत घटना घटी। बच्ची उसके क्रूर और दानवी शिकंजे से छूटकर ऊपर



आकाश में सुन्दर देवी माया के रूप में प्रकट हो गई और कंस की भर्त्सना करते हुए उसने कहा— दुष्ट, क्या तुम समझते हो कि तुम सर्वशक्तिमान की इच्छा को टाल सकते हो। तुम्हारा नाश करने वाला तो गोकुल में पल रहा है। यह कह कर वह अन्तर्धान हो गयी और राजा कंस कांपने लगा।

अपने प्रिय राजा नन्द के घर पुत्र-जन्म का शुभ समाचार सुनकर सारे गोकुल में खुशियां मनाई जाने लगीं और रानी यशोदा जो इस अद्भुत लीला से अनभिज्ञ थीं अपने पुत्र के सुन्दर मुख को प्रसन्नतापूर्वक निहारने लगी।

वामनावतार की कथा

2/10/8

असुरों का राजा बलि अपराजेय था क्योंकि उस पर ईश्वर की कृपा थी। उसने देवताओं के राजा इन्द्र को गद्दी से हटा कर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया था और तीनों लोकों का अधिपति बन बैठा था।

इन्द्र की मां अदिति अपने पुत्र की पराजय पर शोक सन्तप्त थी। जब उसका पति कश्यप लम्बी अनुपस्थिति के बाद घर लौटा तो अपनी पत्नी को दुखी देख कर उसे भी दुख हुआ। उसने अपनी पत्नी को सांत्वना देते हुए कहा, माया की शक्ति बडी अगम्य है। सभी लोग मिथ्या मोह-जाल में भ्रमित पडे हैं। एक सर्वव्यापक सत्ता—आनन्दमय आत्मा सर्वत्र व्याप्त है। सभी मनुष्यों की अन्तश्चेतना में प्रेम के जिस देवता वासुदेव का निवास है, उसी की आराधना करो। उसकी कृपा से तुम माया मोह से मुक्त हो जाओगे।'

अदिति ने कहा, "तो मुझे बताओ मैं कैसे ब्रह्माण्ड के स्वामी सभी गुरुओं में महान गुरु की आराधना करूं जिससे कि मेरे हृदय की इच्छा पूरी हो सके। मैं स्वामी को कैसे प्रसन्न करूं जिससे कि मुझे मनोवाञ्छित वरदान प्राप्त हो सके।'

'अदिति, मैं तुम्हें अवश्य बताऊंगा कि सेवा और आराधना से ईश्वर को कैसे प्रसन्न किया जा सकता है।

ईश्वर की आराधना सम्पूर्ण आत्मिक निष्ठा और मानसिक एकाग्रता से की जाती है। उसकी जीवन्त उपस्थिति को अनुभव करो और इन पवित्र प्रार्थनाओं के साथ उसके प्रति नमन करो

भगवान वासुदेव! आप परम पुरुष हैं
साक्ष्य रूप और शरणागत वत्सल
आप ही सभी हृदयों में प्रकाशित हैं
आपको नमन् है!
आप अव्यक्त हैं और बलिदान के

फलों के दाता हैं
आपकी आत्मा है कर्म का ज्ञान
आपको नमन है!
आप दयालु पिता हैं
आप ममतामयी मां हैं
सभी प्राणियों के स्वामी
आप शक्ति हैं और आप ही ज्ञान हैं
आपको नमन है!
आप जीवन हैं
आप प्रेरणा हैं
आप समस्त वातावरण की धुरी और आत्मा हैं
आप उनके द्वारा प्राप्य हैं जो आपके योग ध्यान में
स्थित हैं
भक्तिपूर्वक
आपको नमन है!
आप केशव हैं प्रेमस्वरूप हैं
सार्वजनीन है आपका रूप
सनातन समृद्धि आपकी लय है
आपको नमन है!
आप परम शरण हैं
आप सर्वोच्च वरदान दाता हैं
आप पूजनीय भगवान हैं
आपके चरण कमलों की आराधना करते हैं ज्ञानी
चरम-तत्व की प्राप्ति के लिए

इस प्रकार भगवान की महिमा का गान करते हुए अपने मन को उन्हीं में एकाग्र करो। साधुओं की संगति करो और उन्हें सेवा द्वारा प्रसन्न करो। सभी प्राणियों को दैवी प्रकाश का साकार रूप मान कर उनकी सेवा करो।

ऋषि कश्यप द्वारा इस प्रकार शिक्षा पाकर अदिति पूरी निष्ठा और सच्चाई से भगवान की आराधना करने लगी। और उसी पर ध्यान केंद्रित कर दिया। उसने अपने सभी मनोवेगों पर काबू पा लिया। उसका मन शांत हो गया और

उसने अपने हृदय में सर्वात्मा और सर्वव्यापक वासुदेव की उपस्थिति का साक्षात्कार किया। उसका आनन्द अखंड था। वह उस उपस्थिति में पूरी तरह तन्मय हो गई। उसका मन प्रेम से द्रवित हो गया और उसने प्रार्थना की

आप पवित्र हैं
पवित्रता ही आपका नाम है
आप निर्धन और दीन के मित्र हैं
आपके चरण-कमलों की शरण में जो भी आता है वही
आपकी पवित्र उपस्थिति में पवित्र हो जाता है
आप सर्वोच्च हैं
आपकी शान्ति सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है
आप अपनी माया के सान्निध्य से
सृष्टि की रचना, पालन और संहार करते हैं
आप अपनी मूल गरिमा में शुद्ध और परम रूप में स्थित हैं
आपको नमन है!
आपका अस्तित्व है अनन्त आनन्दपूर्ण—
आप प्रसन्न हो जाएं तो
अपने भक्तों को अपनी महिमा, शक्ति और शालीनता से
विभूषित कर देते हैं।

अदिति ने अपने भीतर गहरे मौन का अनुभव किया और हृदय के इस मौन में उसने ये शब्द सुने

'देवताओं की माता! मैं जानता हूं कि आप क्या चाहती हैं। आप असुरों के राजा बलि पर अपने पुत्रों को विजयी देखना चाहती हैं। लेकिन बलि मेरे संरक्षण में है। मैं आपसे भी प्रसन्न हूं। आपकी इच्छा पूरी होगी—किस ढंग से यह मैं अभी नहीं बताऊंगा। लेकिन यह मैं तुम्हें बता रहा हूं कि मेरी शक्ति पुत्र रूप में तुम्हारी कोख में जन्म लेगी।

कालान्तर में वचन पूरा हुआ और कश्यप-अदिति के घर पुत्र ने जन्म लिया जिस पर दैवी पुरुष होने के मांगलिक चिह्न अंकित थे। यह पुत्र नाटा था। वह नाटे ब्राह्मण के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

बलि ने जो अब तक नाना नामों [illegible], [illegible] किया जिसमें सभी ब्राह्मणों का [illegible]। [illegible] भाग लेने के लिए नाना [illegible]। [illegible]

जहां यज्ञ की तैयारियां हो रही थीं तो उसे देख कर सभी बुद्धिमान ब्राह्मण और स्वयं राजा बलि आश्चर्यचकित रह गए। उसके शरीर से अलौकिक प्रकाश प्रस्फुटित हो रहा था। सभी उपस्थितगण परम श्रद्धा से खड़े हो गए और राजा बलि ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। तब उस नाटे ब्राह्मण को संबोधित करते हुए राजा बलि ने कहा

ब्राह्मण! आप को मेरा प्रणाम है! आप सभी दैवी शक्तियों के प्रतीक हैं। आपकी पवित्र उपस्थिति से मैं ही नहीं मेरे पूर्वज भी कृतार्थ हो गए। आपकी अनुकम्पा से तीनों लोक कृतार्थ हो गए। कृपया अपनी इच्छा बतलाइए ताकि मैं आपको प्रसन्न कर सकूं और आपकी सेवा कर सकूं।

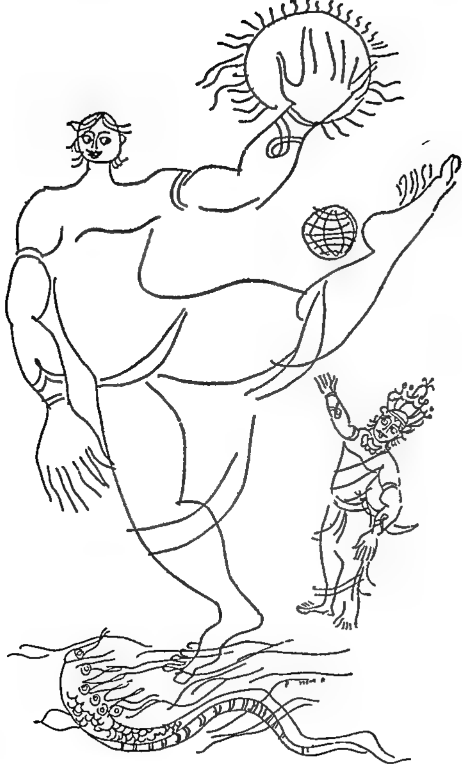
इस पर ब्राह्मण ने उत्तर दिया मैं आपकी श्रद्धा से बहुत प्रसन्न हुआ हूं। यह आपके सर्वथा योग्य है। आप महानतम भक्त प्रह्लाद के पौत्र हैं जिन्होंने इस विश्व को कृतार्थ किया है। आपने वादा किया है कि जो मैं चाहूंगा, वह आप उपहार स्वरूप देंगे। मुझे केवल तीन पग धरती दान में दीजिए।'

राजा बलि इस छोटी सी मांग पर हंसा आह! केवल तीन पग पृथ्वी हो क्या मांग रहे हैं? उसने कहा मैं आपको एक बड़ा द्वीप या एक बड़ा क्षेत्र दे सकता हूं जहां आपकी सभी आवश्यकताएं पूरी होंगी और आप आराम से रह सकेंगे। मेरी प्रार्थना है कि आप कुछ और दान में मांगिए।

बौना भी मुस्कराया और उसने उत्तर दिया मैं तीन पग पृथ्वी से ही संतुष्ट हो जाऊंगा। मुझे अधिक नहीं चाहिए।

राजा बलि ने उस नाटे ब्राह्मण की इस तुच्छ मांग पर मुस्कराते हुए कहा जैसी आपकी इच्छा। आप प्रसन्नतापूर्वक दान स्वीकार करें।

इसी समय राजा बलि के पुरोहित शुक्राचार्य ने बलि को टोकते हुए कहा इस प्रकार दान का वचन देकर आप अपने आपको बहुत बड़ी मुसीबत में डाल रहे हैं। क्या आप जानते नहीं कि कश्यप और अदिति का यह नाटा पुत्र अलौकिक शक्ति का प्रतीक है? यह अपने आकार से पूरे ब्रह्माण्ड को नाप लेगा और आप सब कुछ गंवा बैठेंगे। आपने सब कुछ उसे दे दिया है और शेष कुछ भी नहीं बचा है। वह तीनों



सारा का राज्य देवताओं के राजा इन्द्र को सौंप देगा। यह अपने एक पग से पृथ्वी को दूसरे से आकाश को और शेष ब्रह्माण्ड को नाप लेगा। उसके तीसरे पग के लिए कुछ भी नही बचेगा। यह आपकी सामर्थ्य में कहां है कि अपना वचन निभा सकें।'

राजा बलि को अपने दान की गम्भीरता का अब अनुभव हुआ। उसने कहा ब्राह्मण को दिए गए दान के वचन पर मुझे खेद नही है। मैं इसे निभाऊंगा। क्या मैं प्रहलाद का वंशज नहीं हूं?'

अब बलि ब्राह्मण की ओर उन्मुख हुआ और अत्यन्त श्रद्धापूर्वक बोला कृपया आप दान स्वीकार कीजिए।" ब्राह्मण की ओर देखकर बलि को ऐसा लगा, मानो समस्त ब्रह्माण्ड उसमें स्थित हो। तब जैसे ही ब्राह्मण देवता ने पहला पग उठाया तो समस्त पृथ्वी उसमें समा गई उसके शरीर ने आकाश घेर लिया और उसकी भुजाओं ने चारो दिशाएं। अपने दूसरे पग से उसने अंतरिक्ष और शेष ब्रह्माण्ड नाप लिया। उसके अगले पग के लिए कहीं कोई जगह शेष नही थी। इस पर ब्राह्मण देवता ने मुस्कराते हुए बलि की ओर देखा और पूछा 'मैं अपना तीसरा पग कहां रखूं?"

राजा बलि ने विनम्रता से और श्रद्धापूर्वक कहा 'मुझे अपना वचन अवश्य निभाना है। समस्त ब्रह्माण्ड में, सचमुच कहीं भी जगह नहीं बची है जहां आप अगला पग रख सकें। लेकिन मेरा सिर अभी शेष है। अपना अगला पग मेरे सिर पर रखिए ताकि मैं भी सदा के लिए आपका हो जाऊं।

'हे प्रभु! आपके चरणो में समस्त ब्रह्माण्ड को शरण मिलती है। मैं असीम रूप से कृतार्थ हुआ हूं। मैं कितने लम्बे समय से शक्ति और धन के अहंकार में अंधा पड़ा हुआ था। मुझे अपनी दया और अनुकम्पा से मंडित करें। जो कुछ मेरा है उसे स्वीकार करें और बदले में आपका स्वरूप मेरे हृदय में निवास करे।

ब्राह्मण के रूप में जगत स्वामी ने कहा मेरा भक्त जहां भी है महिमा मंडित है। तुम मेरे भक्त हो और सच्चे हो। अपने इस दान के लिए जो तुमने मुझे दिया है तीनो लोको में हमेशा तुम्हारा नाम रहेगा

ईश्वर सदा सहाय है

भगवान कृष्ण ने गीता मे कहा है —

> ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्परा ।
> अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ।। 6 ।।
> तेषामहं समुद्धर्ता मत्यु संसार सागरात ।
> भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशित चेतसाम ।। 7 ।।

(द्वादश अध्याय)

हे अर्जुन ! जो समस्त कर्मों को मुझ परमेश्वर को अर्पण कर मेरा ध्यान करते ह, और अनन्य भक्ति योग से मेरी उपासना करते हैं। (6) हे पार्थ ! मेरे मे मन लगाकर उपासना करने वाले उन भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्यु रूपी ससारसागर से अच्छी तरह उद्धार करने वाला हू। (7)

हम एकाग्र हो अनन्त मौन और अंधेरे में ईश्वरीय शब्दों को पानी की तरह बूंद बूंद टपकते हुए देखते रहते ह।

गीता म वह सभी कुछ है जिससे अशात चित्त को शांति प्राप्त हो सकती है। दैनंदिन की जीविका के विषय म गीता म एक उक्ति है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्ताना योगक्षेम वहाम्यहम ।।

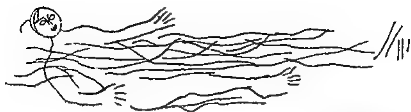
हे अर्जुन ! जो अनन्य भाव से भजन चिन्तन करते हुए मेरा सेवन करते ह, उन सवदा मेरे मे निष्ठा करने वालों का योग क्षेम, अर्थात उनकी आवश्यकता को म ही वहन करता हू।

इस सम्बध मे गावों मे एक सुन्दर कथा प्रचलित है। एक ब्राह्मण गीता की मूल प्रतिलिपि तयार कर रहा था। जब शब्द वहन लिखा गया तो उसके मन मे संदेह उत्पन्न हुआ। उसने पत्नी से विचार विमर्श करते हुए कहा—"प्रिय ! क्या तुम नहीं सोचती कि वहन' शब्द यहा

असम्मान सूचक है? क्या भगवान का आशय यहां 'भजना' शब्द से नहा है।" पत्नी ने उत्तर दिया—'प्रियतम! निस्सन्देह आप ठीक कहते है, 'भेजना' शब्द लिखना ही ठीक होगा।' इस पर ब्राह्मण ने चाकू से उस शब्द को जो उसने अभी अभी लिखा था मिटा दिया और उसकी जगह पर अपना नया सशोधित शब्द लिख दिया। एक क्षण बाद वह स्नान करने के निमित्त उठा। तभी उसकी पत्नी चिन्तातुर सी सामने आ खड़ी हुई। उसने कहा—"क्या मने आपसे कहा नहीं था कि घर म खाद्य-सामग्री नही है? आपको क्या धना कर खिलाऊगी?" ब्राह्मण धीरे से मुस्कराया और उसने उत्तर दिया—'जाओ भगवान से प्रार्थना करो कि वह अपना वचन निभाएं। इस बीच म स्नान करने के लिए जाता हू।' यह कह कर वह दूसरे कमरे म चला गया। अभी मुश्किल से कुछ मिनट ही बीते होगे कि बाहर दरवाजे पर उसकी पत्नी की पुकार हुई। वहा खड़ा एक सुदर युवक उसे बुला रहा था। उसके हाथ म स्वादिष्ट भोजन की एक डलिया थी। स्त्री ने आश्चय स पूछा —"यह डलिया किसने भेजी है?' तुम्हारे पति ने मुझे बुलाया था, इस डलिया को यहा लाने के लिए। युवक ने लापरवाही से कहते हुए डलिया उसके हाथ म थमा दी। युवक ने जैसे ही हाथ ऊपर उठाए तो गृहिणी युवक के हृदय पर पड़ी खरोंचो और घावो को देखकर स्तब्ध रह गई। वह चिल्ला उठी—'हाय! मेरे प्यारे बच्चे! तुम्हें किसने घायल किया है?"

युवक ने आहिस्ता स उत्तर दिया— तुम्हारे पति न बलाने से पहले मुझे एक छोटे तज चाकू से घायल किया था।

ब्राह्मण की पत्नी आश्चयचकित रह गई। खाद्य पदार्थों को भीतर रखकर वह जसे ही लौटी युवक दरवाजे पर नहीं था। तभी उसका पति कमरे म प्रविष्ट हुआ। युवक के प्रति अत्यधिक सहानुभूति के कारण भोजन के प्रति ब्राह्मणी का आश्चय भाव दब गया था। उसन चिल्लाकर कहा— आपने सदेशवाहक को जख्मी क्यों किया। ब्राह्मण भौचक्का सा उसके सामने खड़ा रहा। स्त्री ने समझाते हुए कहा— वही युवक जिसे आपने स्नान के निमित्त जाने स पूव भेजा था। ब्राह्मण ने हकलाते हुए कहा— स्नान के लिए। मैं अभी तो स्नान के लिए गया ही नही।" पति-पत्नी की आख जसे ही मिली वे दोनो समझ गए कि कौन उनके



घर आया था और कभी उन्होंने भगवान के हृदय को घायल किया है। ब्राह्मण फिर धर्म-ग्रंथ पर झुका और संशोधित शब्द को मिटा कर मूल शब्द को वहां लिखा क्योंकि अब सही पाठ के बारे में कोई संदेह नहीं रह गया था। "हे अर्जुन! जो अनन्य भाव से भजन चिन्तन करते हुए मेरा सेवन करते हैं उन सर्वदा मेरे में निष्ठा करने वालों का योग, क्षेम अर्थात् उनकी आवश्यकता मैं ही वहन करता हूं।'

प्राचीन भारत में ईश्वर के प्रति लोगों की ऐसी ही आस्था थी और आज भी सभी के दिलों में ऐसी ही आस्था है।

—बी० बी० सी० पत्रिका

कौन ऊचा, कौन नीचा

विख्यात भारतीय सम्राट अशोक के जीवन की एक घटना है। घटना उस समय की है जब सम्राट अशोक बौद्ध धर्मानुयायी बन चुके थे। सम्राट अशोक का एक मन्त्री था जिसका नाम था यश। उसे यह बात अच्छी नही लगती थी कि सम्राट बौद्ध भिक्षुओं के सामने सिर झुकाए या उन्हें प्रणाम करे क्योंकि उसका विचार था कि बहुत से बौद्ध भिक्षु नीची जातियों के हैं।

एक दिन उसने सम्राट का ध्यान इस ओर दिलाया और कहा कि उन जैसे व्यक्ति के लिए यह उचित नहीं कि वे प्रत्येक भिक्षु को उसकी योग्यता जाने बिना प्रणाम करें। सम्राट अशोक ने इस बात का कोई उत्तर नही दिया। उन्होंने सोचा यह सही अवसर नही है।

कुछ समय बाद सम्राट ने आदेश दिया कि उनका प्रत्येक मन्त्री एक एक पशु का सिर सार्वजनिक स्थान में बेचकर आए। उन्होंने यश को बुलाया और उसे आदेश दिया कि वह बेचने के लिए पशु के सिर के स्थान पर मनुष्य का सिर लेकर जाए।

यह एक अजब आदेश था। किसी ने भी इसे पसन्द नही किया। लेकिन कोई कुछ नही कर सकता था। किसी में भी इस बात का विरोध करने की हिम्मत नही थी। इस आदेश का पालन तो हर हालत में करना ही था, नहीं तो सम्राट के रुष्ट हो जाने का भय था।

सभी पशुओं के सिर जल्दी ही बिक गए। केवल यश ही ग्राहक की तलाश में बाजार में खड़ा रहा। यश निरथक प्रतीक्षा करता रहा। उसने मुफ्त में भी सिर देना चाहा परन्तु तब भी उसे लेने वाला वहां कोई नहीं था।

यश के अतिरिक्त सभी मन्त्री अब तक सम्राट को सूचना देने के लिए दरबार में लौट आए थे। तभी उसे भी सूचना देने के लिए बुलाया गया। हताश और निराश वह लौट आया। धीमे स्वर में उसने मनुष्य के सिर के न बिक पाने की अपनी व्यथा कथा कह सुनाई।



"क्या कारण हो सकता है ?" सम्राट अशोक ने पूछा।

"वे इसकी ओर देखना भी नहीं चाहते थे।" यश ने उत्तर दिया।

"क्या उन्हें सन्देह था कि यह सिर किसी गवार का है ?"

"नहीं, यह नहीं। यह सिर किसी का भी हो सकता था।"

"मान लो यदि यह सिर मेरा होता तो क्या तुम्हें ग्राहक मिल जाता ?" यश इतना भयभीत था कि उत्तर न दे सका। जब सम्राट अशोक ने विश्वास दिलाया कि उसे किसी प्रकार की हानि नहीं होगी तब यश ने उत्तर दिया—"मेरे स्वामी तब भी नहीं। कोई भी मनुष्य के सिर को देखना नहीं चाहेगा, चाहे वह साधारण नागरिक का हो या सम्राट का—वह सब भी सिर है और एक घृणाजनक सिर।"

"तुम कहते हो कि लोग गवार और सम्राट के सिर में अन्तर नहीं करेंगे। यह तुम्हारा अनुभव रहा है—यह कितना सच है। जब मेरा सिर भिक्षुओं के समक्ष झुकता है, जो उनके आध्यात्मिक ज्ञान और आत्मत्याग के जीवन के प्रति केवल सम्मान का सूचक है तब तुम्हें इतनी दुविधा क्या होती है। इसलिए किसी व्यक्ति को उसके पद के आधार पर मत जाचो—बल्कि इस आधार पर जाचो कि उस व्यक्ति में क्या गुण हैं और ज्ञान है। किसी जर्जर और कुरूप शरीर में भी शुद्धतम हृदय का निवास हो सकता है।'

"निरे पत्थरों में भी मोती पड़े मिलते हैं। केवल चौकन्ने जौहरी की आखें ही उन्हें पहचान सकती हैं और उनका मूल्य आक सकती हैं। अज्ञान के पर्दे में घिरे मनुष्य की आखें यह पहचान नहीं कर सकती। इसलिए अपने मन को केवल शरीर के भ्रम में नहीं पड़ने देना चाहिए।"

सम्राट अशोक के कार्य का तर्क यश के सामने अब स्पष्ट हो गया था।

अन्य मोह माया से मुक्त विचारक और महान पुरुष जिनके मन में ज्ञान का प्रकाश हो चुका था और जो भौतिक अहकार से पूरी तरह मुक्ति प्राप्त कर चुके थे सुकरात के समान यह नहीं कह सकते थे—'मैं ऐथेंस निवासी या ग्रीक नहीं हू, मैं एक मनुष्य हू।" और ईसामसीह ने कहा था—'यहूदी और गैर-यहूदी सभ्य और बर्बर यहा कुछ नहीं है।'

नास्तिक

बहुत समय पहले की बात है कि दो मित्र थे—दोनों हो युवा, हमउम्र और एक ही व्यवसाय में थे। यद्यपि वे एक दूसरे के प्रति निष्ठावान थे परन्तु फिर भी आपस में सदा झगड़ते रहते थे।

झगड़े का कारण यह था कि एक पक्का आस्तिक था और दूसरा पक्का नास्तिक। परिणामस्वरूप 'ईश्वर है या नहीं है' के बारे में उनके तर्क अक्सर उग्र रूप धारण कर लेते थे।

एक दिन एक भयानक घटना घट गई।

रोज की तरह वे जंगल में लकड़ियां काटने गए और वहां तर्क वितर्क में उलझ गए। आस्तिक ने कहा—'मैं तुम्हें बता रहा हूं कि ईश्वर है।'

'बकवास', दूसरा व्यंग्य से मुस्कराया।

'ईश्वर है क्योंकि हमने स्वयं अपना सृजन नहीं किया, और शून्य में से तो शून्य की ही उत्पत्ति होती है।'

नास्तिक ने निरुद्वेग भाव से कहा—'इन सब बातों का कोई आधार नहीं है। तुम्हारे जैसे मूर्ख ही उन बातों को मान लेते हैं जो उन्हें बताई जाती हैं क्योंकि उनमें स्वयं सोचने की बुद्धि नहीं होती। अगर तुमने इस विषय पर उतना पढ़ा होता जितना मैंने ।'

सहसा उसका मित्र आग बबूला हो गया।

'ईश्वर है वह चिल्लाया और उसने कुल्हाड़ी से उसके सिर पर वार किया जिससे कि वह तत्काल मर गया।

अपने किए पर भयभीत और पश्चात्ताप से भरे हुए, उसने अपने सिर पर भी वार किया और अपने मित्र के शरीर के पास ही लुढ़क कर मर गया।

अब वे दोनों अपने सूक्ष्म शरीरों में प्रविष्ट हो चुके थे। वे दुखद भाव से अपने नश्वर शरीरों की ओर देखते रहे—उन शरीरों को जिन्हें वे छोड़ चुके थे।



लेकिन आदतें जल्दी नहीं छूटती। जस ही उन्होंने महसूस किया कि वे मृत नहा ह वे फिर तक वितर्क करने लगे।

'देखो, तुमने क्या कर दिया। तुम्हें कोई हक नहीं था कि कुल्हाड़ी से मुझ पर वार करते। नास्तिक ने शिकायत की।

'मैं तुम्हें इस तथ्य से परिचित कराने का प्रयत्न कर रहा था कि ईश्वर है। दूसरे ने धीरज से कहा।

'वह सब ठीक है पर तुम थोड़ी समझदारी से काम ले सकते थे।'

तभी एक साधु वहां आ पहुंचे। दो युवा देहों को वहां पड़ा देख वे उनके प्रति सहानुभूति में रोने लगे। वे सच्चे मन से प्रार्थना करने लगे कि दोनों युवकों की देहों में, जो भरी जवानी में निर्ममतापूर्वक मार गए हैं पुनः प्राण संचार हो जाए। उनकी प्रार्थना में इतनी सच्चाई थी कि दो देवता पृथ्वी पर उतर आए।

देवताओं ने उन शरीरों की ओर देखा और यह देखकर कि सूजन के बावजूद वे युवा और सबल हैं और लगभग नूतन के समान हैं, उन्होंने निश्चय किया कि क्या न वे स्वयं उनमें प्रविष्ट हो जाएं और पृथ्वी का भ्रमण कर आएं। यह देखकर कि उसकी प्रार्थना सुन ली गई है साधु बहुत प्रसन्न हुआ। उसके देखते-देखते दोनों में प्राणों का संचार हुआ, दोनों खड़े हुए एक दूसरे की ओर मुड़े मुस्कराए और फिर हाथ में हाथ डाल कर प्रसन्नतापूर्वक अपने रास्ते पर चल पड़े। आस्तिक ने विजयी मुद्रा में कहा—'मैंने तुम्हें कहा था कि ईश्वर है।'

'ओह क्या व्यर्थ की हांकने लग गए हो। तुम्हारे जैसे मूर्ख लोग ही हर उस चीज में विश्वास जमा लेते हैं जो देखते हैं। अगर तुमने इस विषय पर उतना पढ़ा होता जितना मैंने ।

लेकिन उसका मित्र उसके आगे और कुछ नहीं सुन पा रहा था। वह अपनी कुल्हाड़ी की ओर बढ़ रहा था।

महात्मा बुद्ध की शिक्षा

एक दिन जब महात्मा बुद्ध ने वर्षा ऋतु में श्रावस्ति के समीप जैतवन में डेरा लगाया तो उन्होंने हमेशा की तरह सदाचार के नियमों का उपदेश दिया। बौद्धों एवं सामान्य जनों की उस सभा में एक गृहस्थ भी था जिसका नाम था—महापाल। वह असीम सम्पत्ति का स्वामी था। महात्मा बुद्ध के इस सदाचार के नियम जो 'आदि' में भी सुंदर, 'मध्य' में भी सुंदर और 'अन्त' में भी सुंदर है को सुनकर उसने मन ही मन संघ में प्रविष्ट होने के बारे में सोचा। अपने सभी कार्य निपटा कर, अपनी धन-सम्पत्ति छोटे भाई को सौंप कर उसने पांच साल गुरु के पास अध्ययन करने में बिताए। तब महात्मा बुद्ध द्वारा महापाल को संघ में दीक्षित किया गया और वरिष्ठ चक्षुपाल के रूप में उसका नामकरण किया गया। उसे अर्हत प्राप्ति सम्बंधी ध्यान योग का मंत्र दिया गया।

दूर के एक मठ में एक छोटी सी कोठरी उसे दी गई जिसमें चलना फिरना या लेटना सम्भव नहीं था। केवल बैठे रहकर दिन रात ध्यान लगाया जा सकता था। ध्यान स्थित रहने के कारण शीघ्र ही उसकी आंखों से पानी बहने लगा और उसकी आंखों में लगातार दर्द रहने लगा जिसका इलाज शहर का डाक्टर न कर सका। धीरे धीरे उसकी दोनों आंखों की ज्योति समाप्त हो गई। वह तब तक ध्यान समाधि में लीन रहा जब तक कि वह अर्हत न बन गया। तब वह प्रत्येक वर्षा ऋतु में श्रावस्ति के समीप जैतवन में महात्मा बुद्ध के पास रहता।

एक दिन बौद्ध भिक्षुओं का एक दल भ्रमण करता हुआ बौद्ध मठ में आया। उन्होंने तथागत के उपदेशों को सुना, अस्सी महा भिक्षुओं को प्रणाम किया और दृष्टिहीन चक्षुपाल से मिलने की अनुमति चाही। रात्रि में वर्षा और तूफान के परिणामस्वरूप कीडे मकोडों का झुंड बाहर निकल आया था। दृष्टिहीन भिक्षु तूफान के बाद यद्यपि सारी रात सो

नहा रहा था तो भी वह स्फूर्तिसम्पन्न था और अपनी कोठरी के दरवाजे के सामने गीली धरती पर चहल-कदमी कर रहा था। चूंकि वह देख नहीं सकता था, उसने अनेक कीड़े-मकोड़ों को अपने पैरों तले कुचल कर मार दिया। जब भ्रमणकारी भिक्षुओं ने यह देखा तो वे बहुत रुष्ट हुए। एक दूसरे को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा—

"देखो वरिष्ठ चक्षुपाल ने यह क्या कर दिया। जब उसकी आंखों में ज्योति थी तो वह सोया रहा और कोई पाप नहीं किया लेकिन अब चूंकि उसकी ज्योति जाती रही है इसने कीड़ा-मकोड़ों को नष्ट कर दिया है। 'जो धर्म है वह मैं करूंगा' इसने कहा था, लेकिन जो अधर्म है वही इससे हो गया है।"

इसलिए वे इसकी सूचना देने के लिए तथागत के पास पहुंचे।

क्या तुम लोगों ने वरिष्ठ चक्षुपाल को चलने के दौरान कीड़े मकोड़ों को मारते हुए देखा?

"नहीं भगवन् हमने ऐसा करते हुए नहीं देखा।

ठीक ऐसे ही जैसे तुम लोगों ने उसे ऐसा करते हुए नहीं देखा ठीक वैसे ही उसने कीड़े-मकोड़ों को नहीं देखा। भिक्षुओ! जो विकृतियों से मुक्त हो चुके हैं वे किसी को कष्ट देने के बारे में सोच भी नहीं सकते।

भगवन, यह जानते हुए भी अर्हत बनना उसकी नियति में है और आपने उसे चक्षुपाल नाम भी दिया। फिर यह क्या दृष्टि खो बैठा?"

'भिक्षुओ! यह पूर्व जन्म में उसने पापों का फल है।"

क्या? उसने ऐसा क्या किया था?

'भिक्षुओ! तो सुनो।"

तब अतिथि भिक्षुओं को भगवान बुद्ध ने अपने निकट एकत्र कर लिया, जिससे कि वे जान सकें कि अपने पूर्व जन्म के कर्मों के कारण वह चक्षुपाल कैसे अंधा हो गया। अपने गरिमापूर्ण पद से बुद्ध ने कहना शुरू किया

बात बहुत समय पहले की है जब काशी का राजा बनारस पर राज्य करता था। तभी एक चिकित्सक अपना कारोबार करते हुए गांव और शहरों में घूम रहा था। एक कमजोर आंखों वाली महिला को देखकर उस चिकित्सक ने पूछा, तुम्हें क्या कष्ट है?



मेरी नेत्र ज्योति जाती रही है।

"मैं तुम्हारा इलाज करूंगा।

कृपा करके कुछ कीजिए।

"आप इसके बदले मुझे क्या देंगी?"

यदि आप मेरी आंखों को ठीक कर देंगे तो मैं आपकी दासी बन जाऊंगी—मेरे पुत्र और पुत्रियां भी।

बिल्कुल ठीक वह बोला। उसने उस एक औषधि दी जिसके एक बार लगाते ही उसकी आंखें पुनः ठीक हो गई।

इस पर उस स्त्री ने सोचा मैं इसकी दासी बनने का वचन दे चुकी हूं—मेरे पुत्र एवं पुत्रियां भी इसके दास होंगे। पर यह मेरे साथ अच्छा व्यवहार नहीं करेगा। इसलिए मैं उसे धोखा दूंगी।" जब चिकित्सक आया और उसने पूछा कि उसका क्या हाल है तो उसने उत्तर दिया— पहले मेरी आंखों में थोड़ी पीड़ा थी पर अब तो और अधिक कष्ट है।"

चिकित्सक ने सोचा यह स्त्री मुझे धोखा दे रही है क्योंकि यह मुझे कुछ भी देना नहीं चाहती। मैं उससे शुल्क नहीं चाहता हूं। अब मैं उसे फिर से अंधा बना दूंगा। वह घर चला गया और सारी बात पत्नी को बतायी। उसकी पत्नी ने कुछ नहीं कहा। तब उसने एक मरहम तैयार की और उस स्त्री के घर जाकर उससे कहा कि आप इस मरहम को आंखों पर मलो। उसने ऐसा ही किया और उसकी आंखों की ज्योति बुझ गई ऐसे ही जैसे दीपक की लौ बुझ जाती है। जानते हो वह चिकित्सक कौन था? यही चक्षुपाल ही था।

'भिक्षुओ! मेरे वत्स द्वारा किया हुआ कुकर्म अब भी उसका पीछा कर रहा है क्योंकि कुकर्म कुकर्मी का पीछा वैसे ही नहीं छोड़ते जैसे कि गाड़ी में जुते हुए बैलों का पहिए पीछा नहीं छोड़ते। महात्मा बुद्ध ने इस कहानी का तालमेल ऐसे बैठाया जैसे कोई राजा किसी दस्तावेज पर राजसी मोहर लगाए और फिर इस प्रकार घोषणा करे —

सभी वस्तुओं का मूल विचार है, विचार ही सर्वप्रथम है विचार से ही सभी वस्तुओं का निर्माण होता है।'

यदि कोई व्यक्ति बुरा विचार मन में रखकर कुछ बोलता है या कोई कार्य करता है तो कष्ट उसका पीछा उसी प्रकार करते हैं जैसे पहिए गाड़ी में जुते बैलों का।

सब अपनी-अपनी जगह श्रेष्ठ है

एक राजा हर उस सन्यासी से जो उसके प्रदेश म आता था, पूछा करता कि दोनो म से कौन श्रेष्ठ है—वह जो समार त्याग कर सन्यासी बन जाता है या वह जो गृहस्थ बन कर ससार म रहता है? जब उनम स कोई यह दावा करता कि सन्यासी श्रेष्ठ है तो राजा उससे इस दावे को प्रमाणित करने के लिए कहता और जब वह इसे प्रमाणित न कर पाता तो राजा उसे विवाह करने और गृहस्थ बन कर ससार म रहने का उपदेश देता।

एक दिन एक युवा सन्यासी वहा पहुचा। जब उसस भी यही पूछा गया कि दोनो म से कौन श्रेष्ठ है तो उसने कहा—"हे राजा! प्रत्येक मनुष्य अपने स्थान पर श्रेष्ठ ह।" जब राजा न प्रमाण मागा तो उसने कहा—"म इस प्रमाणित कर दूगा अगर आप कुछ दिन मेरे साथ रहें।"

राजा सन्यासी के साथ हो लिया और एक दूसरे राज्य म आ गया। इस राज्य की राजधानी म एक वृहत समारोह मनाया जा रहा था। एक बडे उत्सव की तयारिया हो रही थी ढोल और नगाडे बज रहे थे, उदघोषको की घोषणाए गूज रही थी। उन्होंने सुना कि उद्घोषक घोषणा कर रहे ह कि राजा की बेटी—राजकुमारी एकत्र समुदाय म से अपना वर चुनेगी। पडोसी देशो के राजकुमार अपनी शानदार वेश भूषा म मुख्य भवन म एकत्र थे जहा राजकुमारी को वर चुनना था। कुछ राजकुमारो के साथ उनकी योग्यताओ एव गुणो का गान करने के लिए भाट भी थे। राजकुमारी एक सुदर पालकी म बठ कर सभी के सामने खडी होती हुई गुजर रही थी। उसके हाथ म वरमाला थी जिसे उसने वर के गले में डालनी थी।

राजकुमारी का कोई भाई-बहन नही था और उसके पति को ही उसके पिता की मत्यु के बाद राज्य का शासक बनना था। सन्यासी और राजा भी उस सभा भवन म चले गए जहा स्वयवर का समारोह सम्पन्न



होना था। राजकुमारी की पालकी एक के बाद एक सभी राजकुमारों के सामने रुकी, परन्तु उसने किसी की ओर ध्यान न दिया। वहां उपस्थित युवा समाज के मध्य एक अन्य युवा संन्यासी भी था जो अपने व्यक्तित्व के प्रभामंडल के कारण सभी से बढ़ कर था। राजकुमारी की पालकी उसके समीप आकर रुकी तो राजकुमारी ने पालकी से बाहर आकर वरमाला उसे पहना दी। युवा संन्यासी ने उस वरमाला को एक तरफ फेंक दिया और कहा—"मैं प्रत्याशियों में से एक नहीं हूं। मैं संन्यासी हूं। विवाह का मेरे लिए क्या अर्थ?"

तब उस देश का राजा उस संन्यासी के पास आया और उसने कहा "बस, क्या तुम्हें मालूम है कि तुम अभी राजकुमारी को अर्पित आधे राज्य के स्वामी बनोगे और मेरी मृत्यु के बाद पूरे राज्य के?" इतना कह कर उसने वरमाला पुनः संन्यासी के गले में डाल दी। युवा संन्यासी ने वरमाला को पुनः फेंकते हुए कहा—"मैं यहां विवाह के लिए नहीं आया हूं।" यह कहकर वह तेजी से सभा भवन से बाहर निकल गया। राजकुमारी युवा संन्यासी के प्रेम में बावली हो गई थी, राजकुमारी ने उसका पीछा किया जिससे कि वह उसे वापस ला सके। दूसरा युवा संन्यासी जो राजा को वहां लेकर आया था, ने सुझाव दिया कि वे दोनों भी उनका पीछा करें। इसलिए वे दोनों भी सभा भवन छोड़ कर चल पड़े। युवा संन्यासी कई मील चलता गया और एक जंगल में पहुंच गया – राजकुमारी अब भी उसका पीछा कर रही थी। संन्यासी घने जंगल के टेढ़े मेढ़े रास्तों में पहुंच कर खो गया। राजकुमारी ने उसे खोजने का प्रयास किया परन्तु खोज में असफल हो जाने के बाद वह एक वृक्ष के नीचे बैठ कर रोने लगी।

वह संन्यासी और उसका साथी राजा भी वहां पहुंचे और उन्होंने राजकुमारी को सांत्वना देने का प्रयत्न किया। चूंकि बहुत अंधेरा हो चुका था और जंगल से बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं मिल पा रहा था, उन्होंने सुझाव दिया कि वे रात भर वटवृक्ष की छाया के नीचे विश्राम करेंगे और अगले दिन सुबह जंगल से बाहर ले जाने वाले रास्ते की खोज करेंगे।

एक छोटे-से पक्षी ने उस वृक्ष के शिखर पर अपना घोंसला बनाया हुआ था। वह अपनी पत्नी और तीन बच्चों के साथ वहां रहता था।

वृक्ष के नीचे तान लागा का बैठा देखकर पक्षी न पत्नी स कहा कि हम अपने अतिथियों के लिए कुछ करना चाहिए। चूंकि सर्दी का मौसम था इसलिए अतिथियों को आराम पहुंचाने के लिए पक्षी ने आग का प्रबंध करने के बारे में सोचा और उड़ उड़कर वह सूखी घास के नन्हे तिनके ला लाकर उनके सामने गिराने लगा। उन्होंने उसका उचित उपयोग किया और आग जला ली। पक्षी ने तब अपनी पत्नी से पुनः कहा—'प्रिय! इन लोगों के पास खाने के लिए कुछ नहीं है। हमारा यह कर्तव्य है कि हम अपने अतिथियों को खाने के लिए कुछ दें।' यह कहते हुए वह आग में कूद पड़ा और मर गया। पक्षी की पत्नी ने सोचा कि उसके पति का शरीर अतिथियों के लिए पर्याप्त भोजन का प्रबंध नहीं कर पाएगा यह स्वयं भी आग में आ गिरी। बच्चों ने भी अपने माता पिता का अनुसरण किया और वे भी आग में गिर गए। वृक्ष के नीचे बैठे तीनों व्यक्तियों को यह समझते देर न लगी कि पक्षियों ने क्या अपना बलिदान किया है। वे पक्षियों के इस आतिथ्य को स्वीकार न कर सके और प्रातःकाल राजा और संन्यासी ने राजकुमारी को जंगल से बाहर निकलने का रास्ता बता दिया जिससे कि वह अपने पिता के पास पहुंच सके।

तब संन्यासी ने राजा से कहा—हे राजन! अब आपने देख लिया होगा कि प्रत्येक मनुष्य अपने स्थान पर श्रेष्ठ है। यदि आप संसार में रहना चाहते हैं तो उन पक्षियों की तरह रहें जिन्होंने दूसरों के लिए अपने प्राण न्योछावर कर दिए। यदि आप संसार त्याग करना चाहते हैं तो उस युवा संन्यासी की तरह रहें जिसके लिए सर्वाधिक सुन्दरी राजकुमारी और राज्य भी तुच्छ था। प्रत्येक मनुष्य अपने स्थान पर श्रेष्ठ है लेकिन एक का कर्तव्य दूसरे का कर्तव्य नहीं हो सकता।'

देवयानी और कच

प्राचीन काल म देवताओ और असुरा मे तीनो लोका पर आधिपत्य के लिए भयकर युद्ध हुआ था । दोनो ओर विख्यात नीति विशारद थ । देवताओ का नतत्व करने वाले थे बृहस्पति जो कि वेदो के नान म पारगत थे जबकि असुरो को शुक्राचाय के गहन नान पर भरोसा था । असुरो का बहुत बडा लाभ यह था कि केवल शुक्राचाय को ही सजीवनी रहस्य पता था जिससे कि वे मृत को भी जीवित कर सकते थ । जो असुर युद्ध क्षत्र म मारे जाते शुक्राचाय उहे बार बार जीवित कर देत थे और इस तरह वे देवताओ के साथ निरन्तर युद्धरत रहते थे । इसस देवताओ को इस लम्बे युद्ध म अपने शत्रुओ के मुकाबले काफी हानि उठानी पडती थी ।

वे बृहस्पति के पुत्र कच के पास पहुचे और सहायता की प्रार्थना की । उन्होने कच से विनय की कि वे शुक्राचाय की कृपा अर्जित करके उनके शिष्य बन जाए । एक बार समीपता और विश्वास पा लेने पर वे प्रत्येक उचित या अनुचित साधन द्वारा सजीवनी के रहस्य को प्राप्त कर जिसमे कि वह बाधा दूर हो जिसके परिणामस्वरूप देवता कष्ट भोग रहे ह ।

कच ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और वह शुक्राचाय स मिलने के लिए असुरो के राजा वृषपर्व की राजधानी जहा शुक्राचाय रहते थे की ओर चल पडा । कच शुक्राचाय के निवास स्थान पर गया और उचित अभिवादन के बाद उन्हें इस प्रकार सम्बोधित किया "म साधु अंगीरस का पोता और बृहस्पति का पुत्र कच हू । म ब्रह्मचारी हू और आपकी छत्र छाया म नानार्जन करना चाहता हू ।

तब यह नियम था कि ज्ञान प्राप्ति के इच्छुक छात्रो को बुद्धिमान गुरु इकार नही कर सकता था । इसलिए शुक्राचाय ने उस अंगीकार कर लिया और कहा— कच, तुम अच्छे परिवार मे हो । म तुम्हें मन स

अपना शिष्य स्वीकार करता हूं। ऐसा करते हुए मैं बृहस्पति के प्रति भी सम्मान प्रकट कर रहा हूं।

शुक्राचार्य के आश्रम में कच कई वर्ष रहा। अपने गुरु के घर में रहते हुए उसने सभी कार्य मन और परिश्रम से किए। शुक्राचार्य की एक सुन्दर कन्या थी—जिसका नाम था देवयानी जिसे वह बहुत प्यार करता था। ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करते हुए कच देवयानी को संगीत नृत्य एवं मनोरंजन के अन्य साधनों द्वारा प्रसन्न रखता। इस प्रकार वह उसका स्नेह पात्र बन गया था।

असुरों को जब यह पता चला तो वे बहुत चिन्तित हुए। उन्हें संदेह हुआ कि कच का उद्देश्य शुक्राचार्य से संजीवनी के रहस्य को जानना है। वे इस संकट को दूर करने का प्रयत्न करने लगे। एक दिन जब कच अपने गुरु के पशुओं को चरा रहा था तो असुरों ने उसको पकड़ लिया उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए और उसका मांस कुत्तों को खिला दिया। जब पशु कच के बिना लौट आए तो देवयानी को बहुत चिंता हुई। वह दौड़ी हुई अपने पिता के पास गई और उसने ऊंचे ऊंचे चिल्ला कर कहा—"सूर्य अस्त हो चुका है और आपका सन्ध्या का यज्ञ भी हो चुका है। अभी तक कच नहीं लौटा है। पशु अपने आप लौट आए हैं। मुझे डर है कि कच के साथ कोई दुर्घटना न हो गई हो। मैं उसके बिना नहीं रह सकती।"

शुक्राचार्य ने संजीवनी कला के प्रयोग से मरे हुए कच को प्रकट होने के लिए कहा। तत्काल कच जीवित हो उठा और मुस्कराते हुए अपने गुरु को प्रणाम किया। देवयानी ने जब देर से आने का कारण पूछा तो उसने बताया कि जब वह पशुओं को चरा रहा था तो अचानक असुरों ने उस पर हमला कर दिया और उसे मार दिया। वह कैसे जीवित हो गया—यह नहीं जानता। पर वह जीवित है इसमें भला क्या सन्देह हो सकता है।

एक अन्य अवसर पर जब वह देवयानी के लिए फूल लाने के लिए गया हुआ था तो असुरों ने दुबारा उसे पकड़ कर मार दिया और उसकी अस्थियां को पीसकर समुद्र के जल में मिला दिया। जब बहुत देर तक कच नहीं लौटा तो देवयानी पहले की तरह अपने पिता के पास गई पिता ने इस बार भी संजीवनी द्वारा कच को जीवन प्रदान किया और जो घटित हुआ था उस सम्बन्ध में कच से सुना।

तीसरी बार असुरों ने फिर कच को मार दिया। अपने विचार से उन्होंने इस बार बड़ी होशियारी से काम किया। उसके शरीर को जलाया, अस्थियों को सुरा में मिलाकर शुक्राचार्य को पेश किया जिसे वे बिना किसी संदेह के पी गए। इस बार पशु फिर कच के बिना लौट आए तो देवयानी ने इस बार पुनः पिता से कच के लिए प्रार्थना की।

शुक्राचार्य ने बेटी को सांत्वना देनी चाही परन्तु सभी प्रयत्न व्यर्थ रहे। उन्होंने कहा—"यद्यपि मैंने बार-बार कच को जीवन दान दिया है लेकिन असुर उसे मारने पर तुले हुए हैं। मृत्यु अवश्यंभावी है। अतः तुम्हारे जैसी समझदार लड़की को दुखी होना शोभा नहीं देता। यौवन और सुन्दरता का आनन्द भोगने के लिए अभी तुम्हारी सारी जिंदगी पड़ी है।

देवयानी कच को हृदय से प्रेम करती थी। सृष्टि के प्रारम्भिक काल से लेकर आज तक विरहाग्नि को नीति वाक्यों से कभी शांत नहीं किया जा सका। देवयानी ने कहा—'अंगीरस का पोता और बृहस्पति का पुत्र कच निर्दोष था। उसने हमारी सेवा, निष्ठा और लगन से की थी। मैं उसे मन से प्रेम करती हूं। अब जबकि वह मर गया है जीवन मेरे लिए असह्य हो गया है। इसलिए मैं भी मर जाऊंगी।" देवयानी ने खाना पीना बंद कर दिया। शुक्राचार्य का हृदय अपनी बेटी के दुख में विह्वल हो उठा। उन्हें असुरों पर बहुत क्रोध आया। उन्हें अहसास हुआ कि ब्राह्मण की हत्या का भयंकर पाप उन सबके भविष्य को ले डूबेगा। उन्होंने संजीवनी कला के प्रयोग से कच को प्रकट होने के लिए कहा। कच चूंकि सुरा में मिश्रित होने के परिणामस्वरूप संजीवनी शक्ति से पुनर्जीवित तो हो गया परन्तु बाहर आने में असमर्थ रहा और प्रत्युत्तर भर दे सका।

शुक्राचार्य ने क्रोध और आश्चर्य में कहा—"हे ब्रह्मचारी! तुम मेरे शरीर में कैसे प्रविष्ट हो गए। क्या यह भी असुरों का कार्य है? यह सचमुच बहुत बुरा है। मेरा मन करता है कि असुरों को तत्काल समाप्त करके देवताओं से मिल जाऊं। लेकिन मुझे पूरा वृत्तांत सुनाओ।'

कच ने उस असुविधाजनक स्थिति में पड़े होने के बावजूद सारा वृत्तांत कह सुनाया।

उच्च आत्मा वाले और संयमी शुक्राचार्य, जिनकी महानता अद्वितीय

थी इस प्रकार छले जाने के प्रति बहुत क्रुद्ध हुए और मानवता के हित में उन्होंने कहा

जो मनुष्य विवेक रहित होकर सुरापान करेगा उसके सभी गुण समाप्त हो जाएंगे वह सभी के लिए घृणा का पात्र बन जाएगा। मानव मात्र के प्रति यह मेरा संदेश है जिसे एक आवश्यक धार्मिक उक्ति के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए।

तब वे अपनी बेटी देवयानी की ओर मुड़े और बोले, 'प्रिय बेटी! एक समस्या पैदा हो गई है। यदि कच को जिंदा रहना है तो उसे मेरे पेट को फाड़कर बाहर आना होगा और इसका अर्थ होगा मेरी मृत्यु। मेरी मृत्यु से ही उसे जीवन प्राप्त हो सकता है।

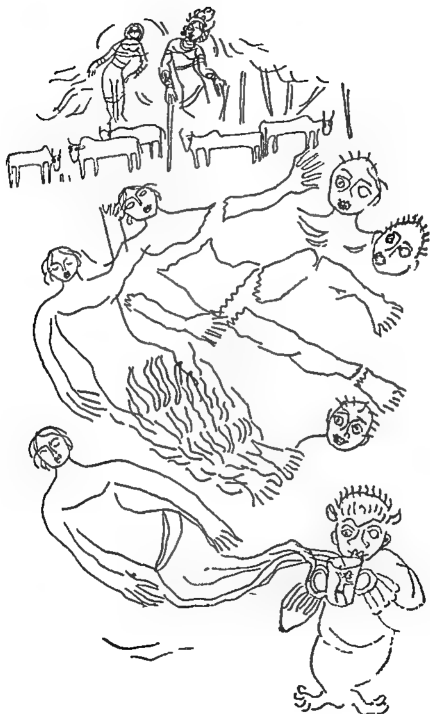
देवयानी रोने लगी और उसने कहा— हाय! दोनों ही तरह से मेरी मृत्यु है क्योंकि तुम दोनों में से एक भी मरता है तो मैं बच नहीं पाऊंगी।'

अब संकट से उभरने का एक मात्र रास्ता शुक्राचार्य के सामने कौंध गया।

"हे बृहस्पति के पुत्र! अब मेरे सामने स्पष्ट है कि तुम किस उद्देश्य से यहां आए थे और सचमुच तुमने अपना उद्देश्य प्राप्त कर लिया है। मैं तुम्हें देवयानी के लिए अवश्य जीवित करूंगा। लेकिन इस प्रक्रिया में देवयानी को मेरी मृत्यु भी मंजूर नहीं। एकमात्र रास्ता यह है कि तुम्हें संजीवनी की कला में दीक्षित किया जाए जिससे कि जब तुम मेरा पेट फाड़ कर बाहर आओ और उस प्रक्रिया में मैं मर जाऊं तो तुम मुझे पुनर्जीवित कर सको। जो ज्ञान मैं तुम्हें देने वाला हूं, उसका प्रयोग तुम मुझे पुनर्जीवित करने में करना जिससे कि देवयानी को हम दोनों में से किसी का वियोग न सहना पड़े।

अपने कथनानुसार शुक्राचार्य ने संजीवनी-कला कच को सिखा दी। तत्काल कच शुक्राचार्य के शरीर से ऐसे बाहर निकल आया जैसे कि बादलों में से पूर्ण चन्द्रमा बाहर निकल आए। महान गुरु शुक्राचार्य क्षत विक्षत होकर गिर पड़े और मृत्यु को प्राप्त हुए।

कच ने तत्काल शुक्राचार्य को संजीवनी के नए प्राप्त ज्ञान से जीवित कर दिया। कच ने शुक्राचार्य को प्रणाम किया और कहा— वह गुरु जो अज्ञानी को ज्ञान देता है पिता तुल्य है और चूंकि मैं आपके शरीर से उत्पन्न हुआ हूं इसलिए आप मेरी माता भी हैं।



उसके बाद कच कई वर्ष तक शुक्राचार्य की छत्रछाया में रहा। जब उसके वचन की अवधि समाप्त हो गई तो उसने देवताओं के लोक में जाने के लिए गुरु से आज्ञा ली।

देवयानी ने कहा "अंगीरस के पौत्र! तुमने अपने निर्दोष जीवन से, अपनी महान उपलब्धियों से और अपने अभिजात्य गुणों से मेरे हृदय को जीत लिया है। मैं तुम्हें एक लम्बे अरसे से हृदय से प्यार करती आई हूं। उस समय से जबकि तुम निष्ठापूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे थे। अब तुम मेरे प्रेम के प्रत्युत्तर में मुझ से विवाह करके मुझे प्रसन्नता प्रदान करो। बृहस्पति के पुत्र तुम मुझे ग्रहण करने के सर्वथा योग्य हो।

उन दिनों बुद्धिमान और योग्य ब्राह्मण कन्याओं के लिए अपने मन की बात सम्मानपूर्वक और स्पष्टता से कहना कोई असामान्य बात नहीं थी। परन्तु कच ने कहा—

'हे निर्दोष कन्या! तुम मेरे गुरु की बेटी हो और सदा ही मेरे सम्मान के योग्य हो। मुझे तुम्हारे पिता के शरीर से उत्पन्न होकर ही जीवन दान मिला है इस प्रकार मैं तुम्हारा भाई हूं। इसलिए बहन तुम्हारे लिए यह उचित नहीं कि तुम मुझे विवाह के लिए कहो।

देवयानी उसे समझाने का व्यर्थ प्रयत्न करती रही, "तुम बृहस्पति के पुत्र हो, मेरे पिता के नहीं। अगर मैं तुम्हारे पुनर्जीवित होने का कारण रही हूँ तो यह इसीलिए कि मैं तुम्हें प्यार करती थी सचमुच मैं तुम्हें सदा प्यार करती रही हूं। तुम्हारे लिए यह उचित नहीं कि तुम मेरे जैसी निर्दोष और निष्ठावान कन्या को त्याग दो।'

कच ने उत्तर दिया— मुझे अधर्म के रास्ते पर मत भटकाओ। निःसन्देह तुम आकर्षक हो। लेकिन मैं तुम्हारा भाई हूं। मुझे विदाई दो। मेरी अभिलाषा है कि मैं सदैव अपने गुरु शुक्राचार्य की पूरी तरह सेवा करता रहूं।'

इन शब्दों के साथ कच ने देव लोक की ओर प्रस्थान किया। शुक्राचार्य ने अपनी बेटी को सांत्वना दी।

—सी० राजगोपालाचार्य

ययाति

सम्राट ययाति पाडवो के पूवजो में से एक था । उसने कभी हार नही मानी थी । वह शास्त्रो के बताए माग पर चलता, अपने पूवजो एव देवताओ का दिल से सम्मान करता । वह प्रजा के कल्याण म लगा रहता जिससे वह लोकप्रिय शासक बन गया ।

पर शुक्राचाय के शाप से वह असमय ही बूढा हो गया था क्योकि उसने शुक्राचाय की पत्नी से दुव्यवहार किया था । महाभारत के रचयिता के शब्दो म— ययाति को वह वृद्धावस्था मिली जो सौदय को समाप्त कर देती है और कष्टदायक होती है । यह कहना अनावश्यक है कि यौवन का अचानक वद्धावस्था मे रूपान्तरण कितना कष्टकारक होता है क्योकि तब युवा स्मृतियो की मधकरता कही अधिक बढ जाती है ।"

ययाति अचानक बूढा हो गया था पर ऐद्रिय सुख भोग के लिए लालायित था । उसके पाच सुदर पुत्र थे सभी योग्य एव गुणी । ययाति ने उन्हें बुलाया और दयनीय भाव से उनके स्नेहपूण व्यवहार के लिए प्राथना की और कहा, "आपके पितामह शुक्राचाय के शाप ने असमय ही मुझे बूढा कर दिया है । मने जीवन का आनन्द नही लिया। यह जाने बिना कि भविष्य म क्या है मने सयमी जीवन व्यतीत किया यहा तक कि मर्यादित सुखो को भी नही भोगा । अब तुम म से एक को मेरे बुढापे का बोझ सहना होगा और बदले मे अपना यौवन मुझे देना होगा जो इसके लिए तयार है वह मेरे राज्य का शासक होगा । म भरे-पूरे यौवन का आनन्द भोगना चाहता हू ।"

उसने सबसे पहले अपने बडे पुत्र से यौवन देने के लिए कहा । उसने उत्तर दिया—"हे महान राजा ! अगर म आपका बुढापा ले लूगा तो युवतिया एव नौकर मुझ पर हसेंगे। म ऐसा नही कर सकता । मेरे छोटे भाइयो से पूछ लें जो आपको मुझसे अधिक प्रिय है ।

जब दूसरे पुत्र स पूछा गया तो उसने भी नम्रतापूवक इन शब्दो मे

इन्कार कर दिया— पिताजी आप चाहते हैं मैं आपका बुढ़ापा ले लूं जो न केवल शक्ति एवं सौन्दर्य को नष्ट कर देता है—साथ ही जैसा कि मैं देख रहा हूं—बुद्धिमत्ता भी। मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं है।

तीसरे पुत्र ने उत्तर दिया— एक बूढ़ा आदमी घोड़े या हाथी की सवारी नहीं कर सकता। उसकी आवाज भी लड़खड़ाती है। मैं ऐसी दयनीय दशा में क्या करूंगा? मुझे यह स्वीकार नहीं।"

राजा व्यथित हुआ, जब उसने देखा कि उसकी इच्छा पूरी करने से उसके तीनों पुत्रों ने इन्कार कर दिया है उसे चौथे पुत्र से अच्छे व्यवहार की आशा थी। राजा ने उससे कहा—'तुम मेरा बुढ़ापा ले लो। यदि तुम मुझे अपना यौवन दे दो तो मैं इसे कुछ समय के बाद तुम्हें लौटा दूंगा और बुढ़ापा ले लूंगा।

चौथे पुत्र ने माफी चाही क्योंकि यह ऐसी बात थी जिसके लिए वह किसी भी हालत में सहमत नहीं हो सकता था। वह आदमी को तो अपना शरीर स्वच्छ रखने के लिए भी औरों की सहायता लेनी पड़ती है कितनी दयनीय स्थिति है। वह अपने पिता को भले ही बहुत प्यार करता था पर उसने ऐसा करने से इन्कार कर दिया।

अपने चारों पुत्रों के इन्कार कर देने पर ययाति को बहुत दुख हुआ। वह कुछ समय मौन रहा फिर उसने अपने आखिरी पुत्र को बुलाया जिसने आज तक उसकी इच्छाओं का विरोध नहीं किया था— तुम मुझे बचालो। मुझे झुर्रियों निर्बलता और श्वेत केशों वाला बुढ़ापा शुक्राचार्य के शाप से मिला है। यह मेरे लिए असह्य है। यदि तुम मेरी इन निर्बलताओं को स्वीकार कर लो तो कुछ समय के लिए मैं जीवन का और आनन्द भोग लूं। फिर मैं तुम्हें तुम्हारा यौवन लौटा दूंगा और बदले में उसके दुखों को ले लूंगा। मेरी प्रार्थना है, अपने बड़े भाइयों की तरह इन्कार न करना। कनिष्ठ पुत्र पिता के वात्सल्य से द्रवित हो गया और उसने कहा— पिता मैं अपना यौवन सहर्ष आपको प्रदान करता हूं तथा वृद्धावस्था के कष्टों और राज्य की चिन्ताओं से भी आपको मुक्त करता हूं। आप खुश रहें। यह शब्द सुनकर ययाति ने उसे गले लगा लिया।

जैसे ही उसने अपने पुत्र का स्पर्श किया ययाति युवक के रूप में रूपान्तरित हो गया। पुरु जिसने पिता की वृद्धावस्था को स्वीकार किया



था, राज्य पर शासन करता रहा और उसे बहुत प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

ययाति ने बहुत समय तक जीवन के आनन्द भोगे लेकिन वह संतुष्ट नहीं हुआ। बाद में वह कुबेर के उद्यान में चला गया और वहां एक कुंवारी अप्सरा के साथ कई वर्ष बिताए। कई वर्षों तक विषय भोग से तृप्ति प्राप्त करने के व्यर्थ प्रयत्नों के उपरान्त वह सच्चाई पहचान गया। पुरु के पास लौट कर उसने कहा— प्रिय पुत्र यौन इच्छा भोग से कभी तृप्ति प्राप्त नहीं हो सकती जैसे ही जैसे कि आग में घी डालने से आग नहीं बुझती। मैंने यह सुना और पढ़ा था परंतु आज तक यह मेरा अनुभूत नहीं बना था। कोई भी इच्छित वस्तु—अनाज, सोना पशु और स्त्री मनुष्य कामनाओं को कभी तृप्त नहीं कर सकती। रुचियों अरुचियों से परे मानसिक सामंजस्य द्वारा ही हम शान्ति प्राप्त हो सकती है। यही ब्रह्मावस्था है। अपना यौवन वापस ले लो और समझदारी से राज्य पर शासन करो।"

इन शब्दों के साथ ययाति ने अपनी वृद्धावस्था वापस ले ली। पुरु द्वारा यौवन धारण कर लेने पर वह ययाति द्वारा राजा बना दिया गया और ययाति स्वयं वन में चला गया। वहां उसने संयमपूर्ण जीवन व्यतीत किया और कुछ समय बाद उसे स्वर्ग प्राप्त हो गया।

—सी० राजगोपालाचार्य

चित्रकेतु की कथा

मनुष्य जन्म सचमुच एक वरदान है क्योंकि यह जीव का आत्मचेतना के रूप में विकास है जिससे कि और विकास की प्रेरणा मिलती है। केवल मनुष्य ही परम सत्य को जान सकता है और पूर्णता प्राप्त कर सकता है पर कम लोग ऐसे होंगे जो यह जानने का प्रयत्न करें कि उनके लिए अच्छा क्या है? कुछ लोग ही ऐसे हैं जिन्हें मुक्ति की आकांक्षा हो और ऐसे तो और भी कम हैं जो सत्य जानना चाहते हों और मुक्ति पाना चाहते हों। ऐसी निर्विकल्प आत्माएं सचमुच विरल हैं जिन्होंने ईश्वर के साथ तादात्म्य स्थापित करके शिव की अनुभूति प्राप्त कर ली है।

एक प्राचीन कथा है जिसमें इस सत्य का बोध कराया गया है।

एक समय की बात है कि सूरसेन नामक स्थान पर एक नाकद्रिय राजा था जिसका नाम था चित्रकेतु। केवल एक कामना के सिवा राजा की शेष सभी कामनाएं पूरी हो चुकी थीं पर जो कामना [illegible] थी उसकी वजह से वह बहुत दुखी रहता था। उसकी [illegible], सुन्दर पत्नी शक्तिस्फूर्ति, पूर्ण यौवन तथा अनेक सुन्दर [illegible] तृप्त नहीं कर पाती थी। उसे पुत्र की इच्छा थी।

एक दिन एक महर्षि अंगीरा राजदरबार में [illegible] कि राजा हृदय से दुखी है, उन्होंने राजा से कहा

'जिसने अपने मन पर विजय पा ली है [illegible] प्राप्त कर ली है। ऐसा लगता है तुम्हारी कोई [illegible] है।

ऋषि के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए [illegible]

'मान्य गुरुवर! आप एक महान् [illegible] समस्त दोष जला चुके हैं। आप अन्तर्दर्शी [illegible] बात जानते हैं। मेरी मनोकामना भी [illegible]

मुझसे सुनना चाहते हैं इसलिए मैं बताता हूँ—मेरे पास वे सभी वस्तुएं हैं जो मनुष्य चाहता है पर केवल एक नहीं है जिससे कि मेरी प्रसन्नता सम्पूर्ण हो—मेरा कोई पुत्र नहीं है।'

महर्षि अंगीर को उन पर दया आ गई और उन्होंने राजा और रानी को वरदान दिया। जाते समय महर्षि ने कहा—'हे राजन! तुम्हारे यहां पुत्र का जन्म होगा—पर वह तुम्हारे लिए एक साथ दुख और प्रसन्नता का कारण बनेगा।'

कुछ समय बाद राजा चित्रकेतु के घर पुत्र का जन्म हुआ। उसकी खुशी का कोई ठिकाना नहीं था। सभी बहुत प्रसन्न थे। परन्तु शीघ्र ही उनकी प्रसन्नता दुख में बदल गई जब एक दिन दाई ने बच्चे को मृत पाया। राजा की ईर्ष्यालु रानियों ने उसे विष दे दिया था। राजा का दुख असह्य था। इस बार फिर महर्षि अंगीर नारद मुनि के साथ राजा के पास पहुंचे और उन्होंने कहा—'हे राजा! तुम जिसके लिए दुखी हो रहे हो जिसे तुमने अपना पुत्र कहकर पुकारा था वह मृत नहीं है। आत्माएं तो नदी की रेत के समान हैं जो समय के प्रवाह में बहती हैं—एक दूसरी से मिलती हैं और फिर अलग हो जाती हैं। केवल मनुष्य का शरीर जन्म लेता और मरता है। आत्मा तो अमर है।'

राजा को दो महान ऋषियों की उपस्थिति से बहुत शान्ति प्राप्त हुई और उसने कहा—'पवित्रात्माओ! आप कौन हैं? आप जैसे ऋषि धरती पर भ्रमण करते हुए उन उन स्थानों पर ज्ञान और शान्ति का प्रकाश फैलाते हैं जहां जहां अशान्ति और अज्ञान है। आप मुझे भी वही प्रकाश दें जिससे कि मेरा अज्ञान दूर हो।'

ऋषि अंगीर ने कहा—'मैं वही हूं जिसने तुम्हें पुत्र का वरदान दिया था। महर्षि नारद भी तुम्हें आशीर्वाद देने आए हैं। हमने तुम्हारे प्रिय पुत्र के देहान्त के बारे में सुना था और हमें पता था कि तुम दुख के कारण निराशा के अंधेरे से घिर गए हो। तुम प्रेम के देवता के अनन्य भक्त हो—तुम्हें इस तरह दुखी नहीं होना चाहिए।

मैं जब पहली बार तुम्हारे पास आया था उस समय मैं तुम्हें उच्चतम ज्ञान प्रदान कर सकता था लेकिन तब तुम्हारी एक मात्र इच्छा पुत्र प्राप्ति की थी इसलिए मैंने तुम्हें वैसा ही वरदान दिया। अब तुमने जान लिया है कि पुत्र प्राप्ति क्या होती है। जीवन में हर चीज अनित्य है। सम्पत्ति



स्वास्थ्य परिवार बच्चे सभी क्षणभंगुर स्वप्न के समान हैं। सभी दुख और कष्ट उनके प्रति मोह और इच्छा के परिणाम हैं—यहां तक कि दुख और कष्ट, प्रीति और भय भी अनित्य हैं।

इसलिए जीवन के असंख्य विरोधाभासों में विश्वास करना छोड़ दो। विवेक से काम लो। केवल एक सत्य को जानो और शांति की खोज करो।

मैं तुम्हें ईश्वरीय नाम का एक पवित्र मन्त्र दे रहा हूं। इस मन्त्र का बार-बार पाठ करो और इसमें ध्यान लगाओ। संयत और एकाग्र मन से ईश्वर का ध्यान करो। इससे तुम सभी प्रकार के दुखों से ऊपर उठ जाओगे और अनन्त शान्ति प्राप्त करोगे।'

तब मृत बच्चे की आत्मा को महर्षि नारद ने बुलाया और उससे कहा कि वह फिर से मृत शरीर में प्रवेश करे, पृथ्वी पर निश्चित अवधि तक जीवन बिताए और अपने माता पिता का मन प्रसन्न करे।

लेकिन आत्मा ने उत्तर दिया—

मेरा पिता कौन है मेरी मां कौन है मेरा न जन्म होता है और न मृत्यु। मैं शाश्वत आत्मा हूं। कर्म पर निर्भर आत्मा कई जन्मों और देह रूपों में भटकती है। शरीरों में बंदी होने के कारण उसे विभिन्न सांसारिक संबंधों में से गुजरने पर बाध्य होना पड़ता है। पर मैंने तो स्वयं को पहचान लिया है कि मैं नित्य अजन्मा और अमर चेतना हूं। मैं वही शाश्वत चेतना हूं जो प्रेम और घृणा से अच्छे और बुरे से अछूती और अप्रभावित हूं। मैं सनातन साक्षी हूं मैं वही हूं।

तब वह आत्मा अन्तर्धान हो गई। दुखी माता पिता को मोह और दुख से मुक्ति मिली और उन्होंने अपने पुत्र के मृत शरीर का अंतिम संस्कार किया।

नारद और अंगीर के ज्ञान से सान्त्वना पाकर राजा चित्रकेतु ने इन महर्षियों को साष्टांग प्रणाम किया। वे उसके लिए ऐसा ज्ञान ले कर आए थे जो शांतिदायक था। नारद ने तब उसे समाधि के पवित्र रहस्यों में दीक्षित किया और उसे निम्नलिखित प्रार्थना सिखाई—

हम—विनत हैं आप के सामने
आपका रूप है चरम आनन्दमय।
आपकी प्रकृति है प्रशमय

आप है शान्ति स्वरूप, आनन्ददायक
आप अगोचर हैं मानवीय चेतना से
आप निमग्न हैं अपने ही आनन्द में
आप अप्रमाणित हैं मोह-माया [और स्वतः सर्जित माया से
आप परम पुरुष हैं
और स्वामी हैं ऐंद्रिय और पदार्थ जगत के
आप के रूप अनन्त हैं
आपको नमन्
आप अपने अलौकिक स्वरूप में व्यक्त और व्याप्त हैं, वहां
जहां मन और इंद्रियां पहुंच नहीं पाती
आप निर्गुण और निराकार हैं
आप हैं जीवन और चेतना के प्रतीक कारणों के मूल कारण
स्वरूप
आप हमारी रक्षा करें, हमारा पथ प्रदर्शन करें
सर्वव्यापक शून्य की भांति आप सर्वव्यापक हैं सभी में स्थित
आपको पहचान नहीं पाते [हम
आपकी चेतना से, गृहीत प्रकाश से, चेतन जीवन से सक्रिय हैं*
आप अनुभव गम्य नहीं इंद्रियां, मन और बुद्धि से
प्रार्थना है आप हमारे हृदय में स्थित रहें हमेशा।

राजा चित्रकेतु उस आध्यात्मिक ज्ञान के अनुसार अपने जीवन को ढालने लगा जो उसे अंगीरा और नारद जैसे महर्षियों ने दिया था। शीघ्र ही उसके मन में ज्ञान का प्रकाश हुआ और उसे प्रेम के देवता के दर्शन हुए। उसे अखण्ड आनन्द, शान्ति और सामरस्य की प्राप्ति हुई। धीरे-धीरे ज्ञान का प्रकाश भी तीव्रतर होता गया, अन्ततः ब्रह्म में उसका एकीकरण हो गया।

---

*इंद्रियां, मन और बुद्धि
ठीक वैसे ही—जैसे अग्नि के समीप पड़ा लोहा गर्म हो जाता है।

क्षमाशीलता

आकाश में चन्द्रमा बादलों के बीचा-बीच धीरे धीरे चल रहा था। नीचे नदी मानो नृत्य करती हुई बह रही थी और वायु में उसकी कल-कल की आवाज गूंज रही थी। पृथ्वी माता चन्द्रमा के प्रकाश में सौंदर्य से नहाई हुई दिखती थी। चारों ओर बने ऋषियों के आश्रम इतने मनोहारी थे कि स्वर्गिक उद्यान भी उनके सामने फीके लगते थे। प्रत्येक आश्रम अपने पेड़ों-फूलों और वन-सम्पदा सहित अपनी मनोहारिता का अद्वितीय चित्र था।

इस चन्द्रस्नात रात्रि में ब्रह्मर्षि वशिष्ठ ने अपनी पत्नी अरुंधती देवी से कहा—"देवी जाओ और ऋषि विश्वामित्र से थोड़ा सा नमक लेकर आओ।"

विस्मित होकर उसने उत्तर दिया—'मेरे स्वामी! यह मुझे क्या करने को कह रहे हैं? मैं आपका आशय नहीं समझ सकी। जिसने मेरे सौ पुत्र नष्ट कर दिए उससे' इससे आगे उसकी आवाज न निकली। गला रुंध गया। अतीत की स्मृतियों ने उसके शांत हृदय में हलचल मचा दी। उसे गहन वेदना का अनुभव होने लगा। कुछ देर बाद थोड़ा सम्भल कर उसने कहा—'मेरे सौ पुत्र वेदों के विद्वान थे और ईश्वर के सच्चे भक्त थे। वे आज सी चांदनी में ब्रह्म की स्तुति गाते हुए निकला करते थे। लेकिन उसने उन सबको नष्ट कर दिया और आप चाहते हैं कि मैं उसके द्वार पर थोड़ा-सा नमक मांगने के लिए जाऊं। मेरे स्वामी! आपने मुझे असमंजस में डाल दिया है।'

ऋषि का मुखमण्डल धीरे धीरे प्रकाशयुक्त हो गया। उसके हृदय की गहराइयों में से यह शब्द निकले—'देवी मैं उसे प्रेम करता हूं।'

अरुंधती का असमंजस और अधिक बढ़ गया। 'यदि आप उसे प्रेम करते होते तो आपने उसे ब्रह्मर्षि कहकर सम्बोधित किया होता। झगड़ा वहीं समाप्त हो जाता और मेरे सौ पुत्रों का बाल भी बांका न होता।

ऋषि का मुखमण्डल दैदीप्यमान हो गया। उसने कहा—"चूंकि मैं उसे प्रेम करता था, इसीलिए मैंने उसे ब्रह्मर्षि कह कर नहीं पुकारा, और क्योंकि मैंने उसे ब्रह्मर्षि कहकर नहीं पुकारा इसलिए उसके ब्रह्मर्षि बनने की सम्भावना अभी है।'

विश्वामित्र क्रोध से आग-बबूला हो गया था। तपस्या में उसका ध्यान नहीं लग रहा था। उसने प्रतिज्ञा की थी कि यदि वशिष्ठ उस दिन उसे ब्रह्मर्षि के रूप में स्वीकृति नहीं देगा वह उसका वध कर देगा। इस प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए वह हाथ में तलवार लेकर आश्रम से निकल पड़ा था। धीरे धीरे जब वह ऋषि वशिष्ठ की कुटिया पर पहुंचा तो वह बाहर खड़ा हो भीतर की बातें सुनने लगा। महर्षि जो कुछ देवी अरुन्धती से कह रहा था, वह सब उसने सुना। यह सोचते हुए तलवार की मूठ पर उसकी पकड़ ढीली हो गयी "हे भगवन, मैं अज्ञान में क्या करने जा रहा था? उस पर आघात करने की सोच रहा था जिसकी आत्मा इन छोटी छोटी बातों से कहीं ऊपर है।"

उसने अपनी चेतना में सकड़ों मधुमक्खियों के डंकों की पीड़ा अनुभव की और दौड़ा हुआ वशिष्ठ के चरणों पर गिर पड़ा। कुछ समय तक वह कुछ न बोल सका। लेकिन कुछ समय बाद उसके बोल फूट पड़े। और उसने कहा— मुझे क्षमा करो, क्षमा करो। लेकिन मैं तो आपकी क्षमा के योग्य भी नहीं हूँ।"

इससे अधिक वह कुछ न बोल सका? क्योंकि अभी उसका अहंकार शेष था। लेकिन वशिष्ठ ने दोनों भुजाएं आगे बढ़ा कर उसे उठाया— ब्रह्मर्षि उठो। उसने धीरे से कहा। लेकिन विश्वामित्र शर्म और मन सन्ताप के कारण वशिष्ठ के कथन पर विश्वास न कर सका।

'मेरे स्वामी मुझे लांछित मत करें।" वह बोला।

'मैं कभी झूठ नहीं बोलता", वशिष्ठ ने कहा, "आज तुम ब्रह्मर्षि बन गए हो। तुमने यह पद अर्जित किया है क्योंकि तुमने आत्मछन्द से मुक्ति पा ली है।"

'तब मुझे दिव्य ज्ञान दो', विश्वामित्र ने अनुरोध किया। "अनन्त देव के पास जाओ। वह तुम्हें वही देगा जो तुम चाहते हो।" वशिष्ठ ने कहा।

विश्वामित्र वहाँ पहुंचे जहा अनन्तदेव पृथ्वी को सिर पर धारण

भारत की आध्यात्मिक कल्याण



किए खड़े थे। "हां, म तुम्हें वही सिखाऊंगा जो तुम सीखना चाहते हो, लेकिन पहले तुम जरा इस पृथ्वी को धारण करो।"

तपस्या से अर्जित शक्ति के अभिमानवश विश्वामित्र ने कहा— 'ठीक है आप अपना बोझ मेरे हाथो पर छोड़ दो।'

"अच्छा तो उठाओ,' अनन्तदेव ने पीछे हटते हुए कहा और पृथ्वी अंतरिक्ष मे नीचे ही नीचे जाने लगी।

यहा और अभी म अपनी तपस्या के सभी फलो का परित्याग करता हू। विश्वामित्र चिल्लाया, केवल पृथ्वी को नीचे न जाने दो।'

रे विश्वामित्र ! क्या तुमने इतनी तपस्या भी नही की है कि धरती को रोक सको।" अनन्तदेव चिल्लाया, "क्या तुम ऋषि-मुनियो से सम्बद्ध रहे हो अगर तुम रहे हो तो तुमने जो योग्यता प्राप्त की है, उसका प्रमाण दो।

केवल पल भर के लिए म ऋषि वशिष्ठ के साथ था।" विश्वामित्र ने कहा।

'उस सम्पर्क से अर्जित फलो का दान करो।" अनन्तदेव न आदेश दिया।

'म उन फलो का दान करता हू।' विश्वामित्र ने कहा। [illegible] पृथ्वी नीचे जाने से रुक गई।

अब मुझे दैविक ज्ञान दीजिए।" विश्वामित्र ने विनती [illegible]।

मूढ़,' अनन्तदेव ने कहा, तुम मेरे पास दैविक [illegible] आए हो उसे भूलकर जिसके पल भर के सम्पर्क न तुम्हें [illegible] के योग्य बना दिया।"

विश्वामित्र इस विचार से क्रोधित हुआ कि [illegible] साथ छल किया है। इसलिए वह दौड़ा हुआ [illegible] और पूछा कि उसने उसे क्यो धोखा दिया।

वशिष्ठ न शान्त, धीमे और गरिमापूर्ण [illegible] मैंने तुम्हें दैविक ज्ञान दे दिया होता तो तुमने [illegible]। पर अब मुझ में तुम्हारी आस्था हो गई है।

और इस प्रकार विश्वामित्र को वशिष्ठ [illegible] हुई।

प्राचीन भारत म ऐसे ऋषि-मुनि [illegible]

उनका आदेश था। उनके पास तपस्या से अर्जित शक्ति इतनी अधिक थी कि वे अपने कंधों पर पृथ्वी को धारण कर सकते थे। आज फिर देश को ऐसे महान पुरुषों की जरूरत है जो इसे महिमा मंडित कर दें।

मायावी सरोवर

बारह वर्ष की निश्चित अवधि समाप्त होने को थी। एक दिन की बात है एक मृग एक दीन ब्राह्मण की शतघनी (अग्नि प्रज्वलित करने वाली लकड़ी) से अपना शरीर रगड़ रहा था। जैसे ही मृग जाने को हुआ शतघनी उसके सींगों में फंस गई और भयभीत पशु पगलाया सा जंगल की ओर भागा। उन दिनों लोग माचिस से परिचित नहीं थे इसलिए आग को जलाने के लिए पत्थर के दो टुकड़ों को रगड़ कर अग्नि प्रज्वलित की जाती थी। "लो देखो मृग मेरी शतघनी लिए भाग रहा है। अब मैं यज्ञ कैसे करूंगा। ब्राह्मण चिल्लाया और मुसीबत की इस घड़ी में सहायता के लिए पांडवों के पास दौड़ा गया।

पांडव पशु के पीछे भागे लेकिन चूंकि वह एक मायावी मृग था, तेजी से दौड़ता हुआ और पांडवों को जंगल में बहुत अन्दर तक ले जाकर गायब हो गया। व्यर्थ की इस खोज से थक कर पांडव अत्यधिक निराश होकर एक वट-वृक्ष के नीचे बैठ गए। नकुल ने शोकपूर्वक कहा—'हम ब्राह्मण का यह छोटा सा काम भी नहीं कर सके। हमारा कितना पतन हो गया है।"

भीम ने कहा—'सचमुच ऐसा ही हुआ है। जब द्रोपदी को भरी सभा में घसीटा गया तो हम उन दुष्टों को नष्ट कर देना चाहिए था। हमने, चूंकि ऐसा नहीं किया था उसी के परिणामस्वरूप शायद हम यह कष्ट सहन कर रहे हैं ?" और उसने दुख से अर्जुन की ओर देखा।

अर्जुन भी इस बात से सहमत था। 'मैंने दुःशासन के अश्लील और अपमानजनक शब्दों को चुपचाप सहा था और कुछ न कर पाया था। इसलिए हम जिस दयनीय अवस्था में पहुंचे हैं उसी के योग्य हैं।"

युधिष्ठिर ने दुख से देखा कि सभी प्रसन्नता और साहस गंवा बैठे हैं। उसने सोचा यदि इन्हें कोई काम करने के लिए कहा जाए तो यह प्रसन्नता अनुभव करेंगे। प्यास से उसका बुरा हाल था इसलिए उसने नकुल से कहा—

भाई। पेड़ पर चढ़कर जरा देखो कि आसपास कहीं कोई सरोवर या नदी है।'

नकुल पेड़ पर चढ़ा। चारों ओर देखा और कहा—'थोड़ी दूरी पर मुझे बगुले और पंछी दिख रहे हैं। वहां अवश्य ही जल होगा।'

युधिष्ठिर ने उसे जल लाने के लिए भेजा।

नकुल ने उस जगह पहुंच कर और वहां सरोवर देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। वह स्वयं बहुत प्यासा था इसलिए भाई के लिए तरकश में पानी लेने से पूर्व उसने अपनी प्यास बुझानी चाही। लेकिन जैसे ही उसने शीतल जल में हाथ डालना चाहा तभी उसने एक आवाज सुनी—'जल्दी मत करो। यह सरोवर मेरा है। माद्री के पुत्र, पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो और फिर जल पियो।'

नकुल को आश्चर्य हुआ लेकिन तीव्र पिपासा के वशीभूत उसने चेतावनी की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और पानी पी लिया। वह तत्काल बुरी तरह ऊंघने लगा फिर गिर पड़ा और मर गया।

नकुल जब काफी देर तक वापस नहीं लौटा तो युधिष्ठिर ने सहदेव को भेजा कि वह पता लगाए कि बात क्या है। जब सहदेव सरोवर पर पहुंचा तो उसने देखा कि उसका भाई जमीन पर पड़ा हुआ है। उसे नकुल की इस दशा पर आश्चर्य हुआ परन्तु इस सम्बन्ध में अधिक सोचने से पहले वह अपनी प्यास बुझाने के लिए सरोवर की ओर भागा।

आवाज फिर सुनायी दी।

'सहदेव! यह मेरा सरोवर है। पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो और उसके बाद ही तुम अपनी प्यास बुझाओ।'

नकुल के समान सहदेव ने भी इस चेतावनी की ओर ध्यान नहीं दिया। उसने पानी पिया और वहीं ढेर हो गया।

सहदेव के न लौट पाने के कारण बहुत चिंतित होकर युधिष्ठिर ने अर्जुन को भेजा कि वह जाकर पता लगाए कि कहीं उसके भाई किसी संकट में तो नहीं फंस गए। तथा उन्हें शीघ्र पानी लाने का आदेश दिया।

अर्जुन तेजी से गया। उसने अपने दोनों भाइयों को सरोवर के समीप मरा हुआ पाया। उन्हें देखकर वह स्तम्भित रह गया। उसे लगा आसपास मंडरा रहा किसी शत्रु ने उन्हें मार डाला है। यद्यपि उसका हृदय दुख

से और बदले की भावना से जल रहा था, तो भी ये सभी भावनाए दुष्ट पिपासा के सामने दब गई थी । प्यास से दुखी वह भी उस प्राणघातक सरोवर के पास पहुच गया। वही आवाज फिर सुनायी दी —'पानी पीने से पूर्व मेरे प्रश्नो का उत्तर दो। यह मेरा सरोवर है। अगर तुम मेरा कहना नही मानोगे तो तुम्हारा भी वही दशा होगी जो तुम्हारे भाइयो की हुई है ।

अर्जुन के क्रोध की कोई सीमा नही थी। वह चिल्लाया—'तुम कौन हो ? मेरे सामने आओ म तुम्हें मार दूगा।" और उसने जिधर से आवाज आई थी उस दिशा मे नुकीले बाण चलाए। अदृश्य पुरुष घृणा से हसा। तुम्हारे बाणो से केवल हवा ही घायल होगी। मेरे प्रश्नो का उत्तर दो उसके बाद ही तुम अपनी प्यास बुझा सकते हो। अगर तुमने ऐसा किए बिना पानी पिया तो तुम भी मर जाओगे।"

बुरी तरह से परेशान अर्जुन ने फैसला किया कि वह इस मायावी शत्रु का खोज निकालेगा और उससे लड़ेगा। उसके लिए अपनी अदम्य प्यास बुझाना जरूरी थी। पहले उसे प्यास रूपी शत्रु को मारना होगा इसलिए उसने पानी पी लिया और वही ढेर हो गया।

युधिष्ठिर ने आतुरता से प्रतीक्षा के बाद भीम से कहा—'प्रिय भाई, महान योद्धा अर्जुन भी अभी तक लौट कर नही आया। हमारे भाइयो के साथ अवश्य ही कोई भयानक दुघटना हो गई होगी क्योकि भाग्य हमारे साथ नही। कृपया उनकी तलाश जल्दी करो और पानी भी लाना म प्यास से मर रहा हू।"

भीम चिन्ता से परेशान, बिना एक भी शब्द बोले तेजी से चल पडे। अपने तीन भाइयो को वहा मरा पड़ा देखकर अत्यन्त दुखी हुआ। उसने सोचा—"यह निश्चय ही यक्षो का काम है । म उन्हें ढूढ निकालूगा और नष्ट कर दूगा। पर मुझे बहुत प्यास लगी है। पानी पीकर म उनसे अच्छी तरह लड सकूगा, इतना कह कर वह सरोवर म उतर गया।

आवाज फिर आयी—"भीमसेन सावधान, मेरे प्रश्नो का उत्तर दो फिर ही तुम पानी पी सकते हो। यदि तुमने मेरी बात नही मानी तो तुम भी मर जाओगे।

"तुम मुझे आदेश देने वाले कौन होते हो ?' भीम चिल्लाया। और उसने विरोधी मुद्रा म चारो ओर देखते हुए पानी पिया। जब ही उसने ऐसा किया उसकी अपार शक्ति क्षीण हो गई और वह भी अपने भाइयो के बीच मृत होकर गिर पड़ा।

अकेला युधिष्ठिर चिंता और प्यास के कारण दुखी था। "क्या कोई दुर्घटना उनके साथ हो गई है या वे अभी तक पानी की तलाश में जंगल में मारे-मारे घूम रहे हैं या क्या वे प्यास से बेहोश हो गए या मर गए हैं?"

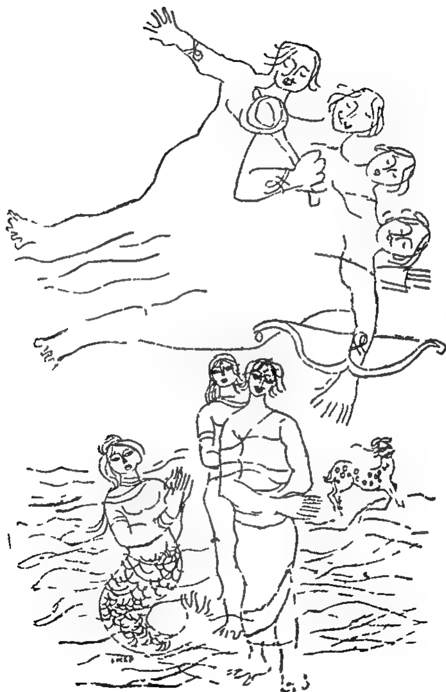
इन विचारों को और अधिक न सह पाने, और प्यास से व्याकुल हो जाने के कारण वह अपने भाइयों और सरोवर की तलाश में निकल पड़ा। युधिष्ठिर उसी दिशा में चल पड़ा जिधर उसके भाई गए थे। उस जंगल में जंगली सूअर, चितकबर मृग और अन्य विशाल जंगली जानवर थे। उस जंगल को पार करता हुआ वह एक सुंदर सरोवर के पास पहुंचा जहां उसे अमृत के समान शीतल स्वच्छ जल दिखाई दिया। पर उसने अपने भाइयों को किसी उत्सव के उपरान्त बिखरे हुए खम्भों की तरह गिरे हुए पाया। अपने दुख पर काबू न पा सकने के कारण वह रो पड़ा।

उसने भीम और अर्जुन के जड़ और निष्क्रिय चेहरों को सहलाया और शोकपूर्ण स्वर में कहा—"क्या हमारे दुखों का यही अन्त होना था। अब जबकि हमारा वनवास खत्म होने को है तुम लोग चले गए हो। मेरे दुर्भाग्य के समय देवता भी मुझे छोड़ गए हैं।"

जब उसने उनके शक्तिशाली शरीरों को देखा जो अब असहाय पड़े थे उसे आश्चर्य हुआ कि ऐसा कौन शक्तिशाली है जिसने उनको नष्ट कर दिया। टूटे स्वर में उसने कहा—'निश्चय ही मेरा हृदय पत्थर का है जो नकुल और सहदेव को मरा देख कर भी नहीं टूटा। मैं अब इस संसार में किसलिए जीवित हूं तभी उसे एक रहस्यभाव ने घेर लिया। यह कोई साधारण घटना नहीं हो सकती। संसार में ऐसे योद्धा नहीं हैं जो उसके भाइयों पर विजय प्राप्त कर सकें साथ ही उनके शरीर पर कहीं घाव के निशान नहीं हैं और उनके चेहरों पर नाम और शांति है। युद्ध में मरे चेहरे ऐसे नहीं होते। किसी दुश्मन के पैरों के निशान भी नहीं हैं। यह कोई मायावी घटना है या दुर्योधन की कोई चाल है? क्या उसने इस पानी को विषैला बना दिया है? तब युधिष्ठिर भी प्यास के वशीभूत सरोवर में उतरा। तभी पहले की सी आकारहीन आवाज ने चेतावनी दी—

'तुम्हारे भाई मर गए क्योंकि उन्होंने मेरे शब्दों की ओर ध्यान नहीं दिया। तुम उनका अनुसरण मत करो। पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो तभी अपनी प्यास बुझाना। यह सरोवर मेरा है।'

युधिष्ठिर जानता था कि यह शब्द यक्ष के अतिरिक्त किसी के नहीं हो



मवत और उसन अनुमान लगा लिया कि उसके भाइया के साथ क्या हुआ ह। इस स्थिति से छुटकारा पाने का उसे सम्भावित माग मिल गया। उसने आकारहीन आवाज से कहा—" कृपया अपने प्रश्न पूछें।

उस आवाज ने जल्दी से एक के बाद एक प्रश्न करने शुरू कर दिए। उसने पूछा—' सूय प्रतिदिन किसस चमकता है ?'

युधिष्ठर ने उत्तर दिया—' ब्रह्म की शक्ति से।'

सकट म व्यक्ति की रक्षा कौन करता है ?'

सकट म साहस ही व्यक्ति की रक्षा करता ह।'

किस विज्ञान क अध्ययन स व्यक्ति बुद्धिमान बनता है ?'

किसी भी शास्त्र को पढने से व्यक्ति बुद्धिमान नही बनता। बुद्धिमान व्यक्तियों के साहचय स ही व्यक्ति बुद्धिमान बनता है।'

यक्ष ने पूछा—'पथ्वी स अधिक धैय किस म ह ?"

युधिष्ठिर न उत्तर दिया—' मा में, जो बच्चे का पालन पोषण करती ह—वह पथ्वी स अधिक महिमामई और धयवान ह।'

'आसमान स ऊचा क्या है ?'

पिता।

वायु स तेज क्या ह ?

मन।

तुच्छ तिनके स अधिक तुच्छ क्या है।

दुखग्रस्त हृदय।'

एक यात्री का अच्छा साथी कौन ह ?

ज्ञान।

एक गहस्थ का मित्र कौन ह ?

पत्नी।

मौत क समय क्या साथ जाता ह ?'

धम केवल धम ही मौत के बाद की यात्रा म आत्मा के साथ जाता है।

'सबसे बडा पात्र कौन सा ह।

पथ्वी ही सबसे बडा पात्र ह जो अपने मे सभी को धारण किए हुए है।"

'सुख क्या ह ?'

'सुख अच्छे आचरण का परिणाम है।"

वह क्या है जिसे त्याग देने पर मनुष्य को सभी प्यार करते हैं ?"

अहंकार । जिसे त्यागने पर मनुष्य को सभी लोग प्यार करने लगते हैं ।

"वह कौन सी हानि है जिससे दुख के बजाय प्रसन्नता होती है ?"

'क्रोध जिसकी हानि से दुख नहीं होता ।'

वह क्या है जिसे छोड़ देने पर व्यक्ति धनी बन जाता है ?"

इच्छा जिसे छोड़ देने पर मनुष्य धनी बन जाता है ।'

'वास्तविक ब्राह्मण कौन है ? उच्च कुल में जन्मा, अच्छे आचरण वाला या ज्ञान वाला ? निर्णयात्मक उत्तर दो ।

'जन्म और ज्ञान से कोई ब्राह्मण नहीं बनता, अच्छे आचरण से ही बनता है । कोई व्यक्ति कितना भी ज्ञानी क्या न हो वह तब तक ब्राह्मण नहीं हो सकता जब तक कि वह बुरी आदतों का दास है । चाहे वह चारों वेदों का ज्ञाता हो, बुरे आचरण वाला व्यक्ति निम्न जाति का ही है ।"

'संसार में सबसे बड़ा चमत्कार क्या है ?"

प्रतिदिन मनुष्य जीवों को यमराज के पास प्रस्थान करते हुए देखता है तो भी वह सदा यहां रहने की सोचता है, सचमुच यही सबसे बड़ा चमत्कार है ।"

इस प्रकार यक्ष ने अनेक प्रश्न किए और युधिष्ठिर ने उन सब के उत्तर दिए ।

अन्त में यक्ष ने पूछा—"ओ राजा ! तुम्हारे मृत भाइयों में से अब एक को जीवित किया जा सकता है । तुम किसे जीवित देखना चाहते हो, उसी में प्राण का संचार हो जाएगा ।

युधिष्ठिर ने कुछ पल सोचा और उत्तर दिया— मेघ जैसे मुख वाले कमल जैसे नयनों वाले चौड़ी छाती और लम्बी भुजाओं वाले नकुल, जो एक आबनूसी पेड़ की तरह गिर पड़ा है—उठ खड़ा हो ।

यक्ष यह सुन कर प्रसन्न हुआ और युधिष्ठिर से पूछा—'तुमने भीम की तुलना में, जिसमें सोलह हजार हाथियों की शक्ति है, नकुल को क्यों चुना । मैंने सुना है कि भीम से तुम्हें सर्वाधिक प्रेम है । और अर्जुन को क्यों नहीं चुना जिसकी भुजाओं की शक्ति तुम्हारी सुरक्षा है ? मुझे बताओ तुमने इन दोनों के बजाय नकुल को क्यों चुना ?"

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—"ओ यक्ष ! धर्म ही मनुष्य की ढाल है,

भीम या अर्जुन नहीं। अगर धर्म खत्म हो जाए तो व्यक्ति नष्ट हो जाएगा। कुंती और माद्री मेरे पिता की दो पत्नियां थीं। मैं कुंती का पुत्र जीवित हूं, इसलिए वह पूरी तरह शोक संतप्त नहीं होंगी, न्याय के पक्ष में मैंने चाहा कि माद्री का पुत्र नकुल जीवित हो जाए।'

यक्ष युधिष्ठिर की निष्पक्षता से बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसके सभी भाइयों को जीवित कर दिया।

यह मृत्यु का देवता यम था जिसने मृग और यक्ष का रूप धारण किया था ताकि यह युधिष्ठिर की परीक्षा ले सके। उसने युधिष्ठिर को गले लगाया और आशीर्वाद दिया।

यम ने कहा— वनवास की निश्चित अवधि समाप्त होने में अभी कुछ दिन बाकी हैं। तेरहवां साल भी बीत जाएगा। तुम्हारा कोई भी शत्रु तुम्हें खोज नहीं पाएगा। तुम अपने काम को सफलतापूर्वक पूरा करोगे।

इतना कह कर वह अंतर्धान हो गया।

पांडवों को यद्यपि वनवास काल में अनेक कष्ट उठाने पड़े, लेकिन वनवास के लाभ भी कम नहीं थे। यह समय कठोर अनुशासन और आत्मावलोकन का था जिसमें से वे अधिक शक्तिशाली और अधिक शालीन होकर उभरे। अर्जुन ने तपस्या करके दिव्य अस्त्रों की प्राप्ति की और इंद्र के सम्पर्क से वे अधिक शक्तिशाली हो गए। भीम का अपने बड़े भाई हनुमान से उस झील के पास मिलन हुआ जहां सुगंधित कमल खिले हुए थे। हनुमान से गले मिल कर उसकी शक्ति दस गुना बढ़ गई। मायावी सरोवर पर धर्मराज अपने पिता यम से मिलकर युधिष्ठिर का प्रभा मंडल दस गुना अधिक चमकने लगा।

युधिष्ठिर के अपने पिता के साथ मिलाप की पवित्र कथा को जो लोग सुनेंगे, उनके मन कभी भी पाप की ओर नहीं जाएंगे। वे कभी नहीं चाहेंगे कि मित्रों के साथ उनके झगड़े हों और न ही दूसरों के धन की ओर देखकर ललचाएंगे, वे कभी भी लालच के शिकार नहीं होंगे, वे अनित्य चीजों के प्रति अनावश्यक रूप से कभी मोहग्रस्त नहीं होंगे।

इस प्रकार वात्स्यायन ने जनमेजय को यक्ष की कथा सुनाई। यह कथा जो हमने सुनाई है उसका वैसा ही फल पाठकों को मिले।

—सी० राजगोपालाचार्य

राजा शिवि की कथा

एक समय की बात है एक राजा था जिसका नाम था शिवि राणा। वह बहुत प्रतापी था और उसका प्रताप इतना था कि देवता भी डर से कांपते थे कि कहीं वह उनसे स्वर्ग का राज न छीन ले। एक बार देवताओं को एक चाल सूझी जिससे वे उसके आत्म संयम की परीक्षा ले सकते थे। उसे दुर्बल सिद्ध कर उसका अहंकार तोड़ सकते थे। देवताओं की दृष्टि में केवल वही मनुष्य अजेय है जिसने अपना मन जीत लिया हो।

एक दिन शिवि राणा स्तम्भों वाले विशाल कक्ष में बैठे हुए थे—सामने खुला हुआ बरामदा था और दूर तक फैले हुए उद्यान और फव्वारे थे। उनके ठीक सामने एक श्वेत कबूतर उड़ता हुआ आया जिसका पीछा एक बाज कर रहा था और उसे मारना चाहता था। डर के मारे कबूतर जितनी तेजी से उड़ता था बाज उतनी ही तेजी से उसका पीछा करता। लेकिन जैसे ही कबूतर पकड़े जाने को था वह नन्हा-सा पक्षी शिवि राणा के सिंहासन के पास पहुंच गया। राजा ने बिना किसी हिचकिचाहट के उसे अपने राजसी वस्त्रों में शरण दे दी। वह नन्हा पक्षी राजा के हृदय से लगकर हांफ और कांप रहा था। वह बाज भी सिंहासन के पास आकर रुक गया। उसका पूरा शरीर क्रोध से जल रहा था। उसे देख कर राजा के सिवा अन्य सभी लोग कांपने लगे। उस बोलता देख किसी को जरा भी आश्चर्य नहीं हुआ।

'मेरा शिकार मुझे सौंप दो,' उसने ऊंची आवाज में राजा से कह दिया।

शिवि राजा ने धीरे से कहा, 'कबूतर मेरी शरण में आ गया है और मैं विश्वासघात नहीं कर सकता।'

'क्या ऐसी दया की ही डींग मारते रहते हो।' बाज ने तिरस्कारपूर्ण स्वर में कहा—"जिस कबूतर को आपने शरण दी है वह मेरा भोजन है। आप इसे बचा कर मुझे भूखा मार रहे हो— क्या यही तुम्हारा न्याय है।"

नहा बिल्कुल नहा ' राजा ने कहा वास्तव म म इसके बल्ल उतनी मात्रा में कोई भी ऐसा भोजन दूगा जो तुम पसद करोगे।

कोई भी भोजन।' बाज ने उपहास करते हुए कहा—'मान लो म तुम्हारे शरीर का मास मागू तो !"

म अपने शरीर का मास दे दूगा। शिवि राणा ने दृढ़ता-पूर्वक कहा।

पक्षी की भयानक हसी से कक्ष गूज उठा। सिंहासन के समीप खडे सभी लोग चौंक गए। जब उन्होंने दुबारा पक्षी की ओर देखा तो उन्होंने पाया कि पक्षी की आखें पहले की तरह चौकन्ना और तेज ह।

तब म चाहूगा उसने धीमे और दृढ स्वर म कहा—'इस कबूतर को तराजू म रखकर इसके बराबर राजा का मास तौला जाए।

ऐसा ही होगा शिवि राणा न तराजू की ओर सकेत करते हुए कहा।

रुको बाज ने कहा मास केवल शरीर के दायी ओर स ही काटना होगा।

यह भी स्वीकार है राजा ने मुस्कराते हुए कहा।

तुम्हारी पत्नी और पुत्र भी बलिदान के समय उपस्थित रहेंगे।'

रानी और मेरे पुत्र को ले आओ। राजा ने एक अधिकारी से कहा।

इस प्रकार सभी लोग अपने-अपने स्थान पर बैठ गए। तराजू लाया गया। उसमें एक ओर कबूतर रखा गया। बधिक ने दुखदायी आदेश को पूरा करना शुरू किया परन्तु सभी सभासदों ने आश्चर्यचकित होकर देखा कि बधिक जितना भी मास काट-काट कर दूसरे पलडे पर रखता गया कबूतर भारी ही रहा और दोनो पलडे बराबर न हो पाए।

तब अन्तत शिवि राणा की बाई आख से आसू टपका।

रुक जाओ बाज गरजा 'म अनिच्छित बलि नहीं चाहता। तुम्हारे आसू उपहार के मूल्य को नष्ट कर देंगे।

'नही मेरे मित्र ऐसा नही है' राजा ने बाज की तरफ मुडते हुए प्रसन्नता और नम्रता से कहा— नही तुम्हें भ्रम हुआ है। मेरा वाम अग इसलिए रोया है क्योंकि निबलो एव असहायो की सहायता का सौभाग्य केवल दाया पक्ष ही प्राप्त कर रहा है।



यह शब्द सुन कर सभी उपस्थित लोग चौंक पड़े। बाज और कबूतर अन्तर्धान हो गए थे और उनके स्थान पर देवताओं के राजा इन्द्र और अग्नि देव खड़े थे।

इन्द्र की आवाज में गहरा सम्मान समाया हुआ था जब उन्होंने कहा — शिवि राजा की महानता की तुलना में देवता व्यर्थ ही मंथन करते रहेंगे। असहायों के सहायक, बलिदान के आनन्द से तेजोदीप्त ओ राजा! हम तुम्हें आशीर्वाद देते हैं। ऐसी आत्माओं के प्रति देवताओं को नमस्कार करना चाहिए और उन्हें अपने से भी ऊंची पदवी प्रदान करनी चाहिए।'

(सिस्टर निवेदिता)

चन्द्रमा मे खरगोश

बहुत साल पहले उस देश म जहा महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ था, एक घन पर्वतीय जगल मे एक बन्दर एक लोमडी और एक खरगोश रहते थे। तीना घनिष्ठ मित्र थे और बहुत प्यार से इकट्ठे रहते थे। एक बार भगवान भिखारी के वेश मे स्वग से धरती पर उतरे। वे गावो कस्बो और शहरो का भ्रमण करते रहे परन्तु लोगो का व्यवहार उनके प्रति सम्भावपूण नही था। लोगो ने उन्हें कुछ नही दिया। सयोग से उन्होने एक साथी भिखारी से जगल के तीन पशु मित्रो के बारे मे सुना और उन्होने वहा जाने का फैसला कर लिया। जगल की सीमा पर एक बडा पत्थर पडा था। भूखा और थका हुआ होने के कारण भिखारी वहा आराम करने के लिए बैठ गया। तभी बन्दर लोमडी और खरगोश जगल से बाहर आए। भिखारी ने उनसे कहा,— मेरे मित्रो मुझ पर दया करो। म बहुत गरीब हू और मने एक लम्बे अरसे से कुछ नही खाया। मैंने सुना है कि मनुष्यो की अपेक्षा तुम्हारा व्यवहार अधिक मित्रतापूण एव दयापूण है। इसलिए मेरी सहायता करो।"

यह सुनकर तीना मित्र उस निर्धन मनुष्य के लिए दयार्द्र हो गए। बन्दर तेजी से भागा हुआ गया, और जगल म से अनेक प्रकार के फल तोड लाया और भिखारी को दिए। लोमडी पास की एक नदी पर दौडी गई वहा से कुछ मछलिया पकड लाई और गरीब भिखारी को दे दी। खरगोश जगल के एक कोने से दूसरे कोने तक भागता रहा लेकिन खाली हाथ लौट आया।

भिखारी ने यह देखकर खरगोश से कहा—'खरगोश! मैने सुना था कि आप भी बन्दर की तरह मवोपूण और लोमडी की तरह सहायक हो, कृपया मेरे लिए कुछ लाओ।

"क्षमा कीजिए महोदय, खरगोश ने कहा "मुझे आपके प्रति सहानुभूति है और अपने मित्रो के समान मुझे भी आप पर दया आ



रही है। पर म क्या कर सकता हू । मुझमे वह प्रतिभा और बुद्धिमत्ता नहीं है जसी कि उनमे है—और इससे मैं बहुत दुखी हू।

यह कहने की देर थी कि खरगोश का भाव बदल गया। लगता था जैसे वह गहराई से किसी बात पर सोच रहा हो। और तब अचानक उसन निणय लिया। —'मेरे मित्रो' उसन बन्दर और लोमडी से कहा—'जल्दी करो और जगल स सूखी घास ले आओ और उसे यहा इकट्ठी करो।

दोस्तो न वसा ही किया और वहा इधन का ढेर लगा दिया। तब खरगोश ने लोमडी से कहा कि वह आग जला दे।

यह हो जाने पर उसने अपने दोनों मित्रो को गले लगाया और उनको पता चलने से पहले ही अचानक भिखारी का यह कहते हुए वह लपटो में कूद पडा— प्रिय पथिक, म आपके लिए कुछ न कर सका मेरा शरीर ठीक तरह स भुन जान पर कृपया आप उसे निकाल कर खा लें।'

भिखारी हक्का-बक्का रह गया और उस निरीह तथा भोले खरगोश के लिए उसका हृदय भर आया। खरगोश के अधजले शरीर को अग्नि मे से निकाल कर उसने हृदय से लगा लिया। बन्दर और लोमडी को आश्चय म डूबा छोड कर भिखारी खरगोश को लेकर आकाश मडल मे चला गया। भगवान ने चन्द्रमा म एक विशाल भवन बनवाया और उसे खरगोश को दे दिया जिसन निस्वार्थ भाव स अपनी बलि दी थी। तभी स खरगोश चन्द्रमा में दिखाई पडता है।

अनुसरणीय चरण-चिन्ह

(1) पार्वती की अनुकंपा

हिमालय की पुत्री देवी पार्वती ने कठिन तपस्या करके भगवान शंकर को पति रूप में प्राप्त किया था। भगवान शंकर ने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिए थे और पार्वती ने उन्हें पति रूप में वरा था। उसके बाद शंकर अंतर्धान हो गए थे। पार्वती आश्रम के बाहर एक शिला पर बैठी हुई थी। तभी उसने झील में पड़े एक बच्चे की चीख सुनी। बच्चा चिल्ला रहा था 'ओह! मैं बच्चा हूँ और मुझे ग्राह ने पकड़ लिया है। यह मुझे निगल जाएगा। मैं अपने माता पिता का इकलौता बेटा हूँ। दौड़ो, और मुझे बचाओ। ओह! मैं मर रहा हूँ।'

बच्चे की चीख सुनकर पार्वती, तत्काल उस स्थान पर पहुँची और उसने देखा कि निकटवर्ती झील में ग्राह ने एक सुन्दर बालक को दबोचा हुआ है। ग्राह ने जब पार्वती को देखा तो वह बच्चे को दबाये हुए तेजी से झील के मध्य में चला गया। बच्चा सचमुच बहुत सुंदर था, पर ग्राह की गिरफ्त में जकड़ा होने के कारण वह बुरी तरह से रो रहा था। बच्चे का कष्ट देख कर पार्वती का हृदय द्रवित हो उठा। उसने कहा 'हे ग्राहराज! बच्चा बहुत कष्ट में है कृपया इसे तत्काल छोड़ दें।' ग्राह ने उत्तर दिया 'देवी! दिन के छठे पहर में जो भी मेरे निकट आता है वह मेरा भोजन बनता है। बच्चा इस कालावधि में मेरे पास आया है और इस प्रकार ब्रह्मा ने इसे मेरे भोजन के निमित्त बना कर भेजा है। मैं इसे छोड़ नहीं सकता।' देवी पार्वती ने कहा 'हे ग्राहराज मैं आपके सामने विनत हूँ। मैंने हिमालय की चोटी पर बैठ कर कठिन तपस्या की है। उसका ध्यान में रखकर बच्चे को छोड़ दें।' ग्राहराज ने कहा— 'कृपया अपनी कठिन तपस्या का फल मुझे दे दें मैं बच्चे को छोड़ दूँगा।' पार्वती ने उत्तर दिया 'हे ग्राहराज, तपस्या का फल ही नहीं मैं समस्त जीवन का श्रेय आपको अर्पित करती हूँ। आप बच्चे को छोड़



द।' पावती का इतना कहना भर था कि ग्राह का शरीर तपस्या के प्रकाश से देदीप्यमान हो उठा। उसका शरीर दोपहर के सूर्य की ज्वाला में मोम के समान जलने लगा। ग्राह ने कहा 'देवी! यह आपने क्या किया! जरा सोचो! कितनी कठिनाई से और कितने उच्च उद्देश्य से आपने यह तपस्या की थी। ऐसी तपस्या के फल को छोड देना आपके लिए उचित नहीं है। खैर ब्राह्मणों के प्रति आपकी निष्ठा और दुखियों के प्रति आपके सेवा भाव को देखकर मैं बहुत सन्तुष्ट हूं। मैं तुम्हें वरदान देता हूं 'अपने तप के फल और बच्चे को वापस ले लो।' इस पर पावती ने भक्ति भाव से कहा 'हे ग्राहराज! यह मेरा कर्तव्य था कि इस गरीब ब्राह्मण बच्चे को अपने प्राण देकर भी बचाती। तपस्या फिर भी हो सकती है पर यह बच्चा दोबारा नहीं मिल सकता था। मैंने हर बात पर विचार करके ही इस बच्चे को बचाया है और अपनी तपस्या आपको अर्पित की है। मैं जो चीज दे चुकी हूं, वह वापस नहीं हो सकती। केवल इस बच्चे को छोड दो।" यह सुन कर और बच्चे को वहां छोड कर ग्राह अन्तर्धान हो गया। पावती ने पुनः तपस्या करनी शुरू की—यह सोचते हुए कि उसकी पहले की तपस्या नष्ट हो चुकी है। इस पर भगवान शंकर ने उन्हें दर्शन दिए और कहा मैं ही बच्चा था और मैं ही ग्राह था। तुम्हारी अनुकम्पा और बलिदान की महिमा को देखने के लिए ही मैंने यह क्रीडा की थी। देखो, तुम्हारे बलिदान के परिणामस्वरूप तुम्हारी तपस्या का मूल्य हजार गुणा बढ गया है।

(2) मां का हृदय

अर्जुन ने अश्वत्थामा को जो उसके गुरु का पुत्र था और जिसने उस के पांच पुत्रों की सुप्तावस्था में हत्या कर दी थी, द्रौपदी के सामने प्रस्तुत किया। द्रौपदी ने अश्वत्थामा की ओर देखा और उसका क्रोध तत्काल शांत हो गया। मां का हृदय अनुकम्पा से भर उठा और द्रौपदी ने अर्जुन से कहा—'मेरे स्वामी इसे मुक्त कर दो। मुझे इसकी जान नहीं चाहिए। यह तुम्हारे गुरु का पुत्र है। अगर यह मार दिया गया तो इसकी माता तुम्हारे गुरु की पत्नी अपने पुत्र की मृत्यु पर वैसे ही शोक में डूब जाएगी जैसे मैं अपने पांच पुत्रों के मरने पर शोक संतप्त हूं। मेरे पुत्र पुनः जीवित



नही हो सकते। इसलिए म सिफ अपना बदला लेने के लिए किसी मा का अपने समान दुखी नही बना सकता। मैं इस क्षमा करती हू। तुम्हें भी इसे क्षमा कर देना चाहिए।

(3) सुख दुख का साथी

शिकारी न एक विषैला बाण मृग पर चलाया। निशाना चूक जाने स उस बाण न एक बडे पेड को बेंध दिया। विष का असर पेड पर तत्काल हुआ। उसके पत्त झड गए और सूखने लगे। एक लम्बे अरसे स एक तोता उस पेड की खोखल में रह रहा था। पेड के साथ उसे मोह था, इसलिए उसने पेड को नहा छोडा। उसने खोखल से बाहर आना छोड दिया और इस तरह खाने-पीने के लिए कुछ भी न मिल पाने की वजह स सूख कर काटा हो गया। तोते न सकल्प कर लिया कि वह भी अपने साथी पेड के साथ मर जाएगा। उसकी उदारता, सहनशक्ति सुख दुख म समरसता और आत्मबलिदान की भावना ने पूरे वातावरण का बदल दिया। इन्द्र का ध्यान उसकी ओर खिंचा और उन्होने उसे दशन दिए। तोते ने इन्द्र का पहचान लिया। इस पर इन्द्र न कहा "प्रिय तोते! इस पेड पर न पत्ते ह न फल। अब इस पर कोई पक्षी नही बैठता। यहा निकट ही विशाल जगल है जहा हजारा सुदर पेड ह जो फूला-फला स लदे ह और रहने योग्य असख्य पत्ता से ढकी टहनिया ह। यह पेड अब खत्म होने को है। इस पर अब फूल फल नही होंगे। इन सब बातो को ध्यान म रखते हुए तुम इस मुरझाए हुए पेड को छोड कर किसी हरे भरे पेड पर क्यो नही चले जाते? तोते न पेड के प्रति सहानुभूतिपूण शब्दा में उत्तर दिया— हे इन्द्र मेरा जन्म इस पेड पर हुआ था और यही म बडा हुआ। यहा रहते हुए मने कई अच्छी बातें सीखी। जब म बच्चा था तो इस पेड ने मेरी देखभाल की। इसने मुझे खाने क लिए मीठे फल दिए और मुझे शत्रुओ के आक्रमण स बचाया। अब म अपनी प्रसन्नता के लिए इसे इस दीन हालत में छोड कर कहा जाऊ? मन चूकि इसके साथ खुशा बाटी है तो अब म इसके साथ कष्ट भी सहूगा। देवताओ के स्वामी होने पर भी आप मुझे गलत शिक्षा क्या द रहे हैं? यह पेड जब मजबूत और समृद्ध था तो मने इसकी छाया में अपनी जिन्दगी बिताई। अब जब कि यह अशक्त और नष्टप्राय है यह



कैसे सम्भव है कि मैं इसे भाग्य के सहारे छोड़ कर चला जाऊं।"

तोते के इन स्नेहसिक्त, मधुर और आकर्षक शब्दों को सुन कर इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए। वह द्रवित हो गए और उन्होंने तोते से कहा "प्रिय तोते! मुझसे जो चाहो वरदान मांगो। तोते ने उत्तर दिया "आप मुझे वरदान देना ही चाहते हैं तो यह दीजिए कि यह पेड़, जो मुझे बहुत प्रिय है फिर से पहले की तरह हरा भरा हो जाए। पेड़ की नई शाखाएं पत्ते और फल उग आए। पेड़ पहले की तरह हरा भरा हो गया और निश्चित जीवन अवधि समाप्त हो जाने पर अपने आदर्श व्यवहार के प्रतिदान स्वरूप तोते को स्वर्ग की प्राप्ति हुई।

(4) मानसिक सन्तुलन की परीक्षा

'नामू! तुम्हारी धोती पर खून के धब्बे क्या हैं?"। 'मां, मैंने कुल्हाड़ी से टांग छीलने की कोशिश की थी।'

मां ने धोती परे हटाते हुए देखा कि टांग की चमड़ी और मांस छिला हुआ है। नामदेव इस प्रकार चल रहा था जैसे कुछ भी न हुआ हो।

"तुम बहुत मूर्ख हो —नामदेव की मां ने कहा। 'क्या कोई कुल्हाड़ी से अपनी टांग छील डालता है?" अगर टांग टूट जाए तो व्यक्ति लंगड़ा हो जाएगा और यदि घाव विषाक्त हो गया तो टांग कटवानी भी पड़ सकती है।

'ऐसे तो पेड़ को भी कुल्हाड़ी से जख्मी हो जाना चाहिए था।" अभी उस दिन मैं आपकी आज्ञा पाकर कुल्हाड़ी से पलाश वृक्ष के तने की छाल छील कर लाया था। तभी मुझे लगा कि मैं अपनी टांग की चमड़ी छील कर देखूं कि कैसा महसूस होता है। मां, मैंने यह इसलिए किया ताकि मैं जान सकूं कि पलाश वृक्ष को कैसा महसूस हुआ होगा।

नामदेव की मां को याद आया कि एक दिन उसने काढ़ा बनाने के लिए उसे पलाश वृक्ष की थोड़ी सी छाल लाने के लिए भेजा था। नामदेव की मां गदगद हो उठी और बोली, प्रिय नामू! लगता है तू महान साधु बनेगा। पेड़ तथा अन्य जीवों में भी वैसा ही चेतन तत्व है जैसा मनुष्यों में। जैसे हम घायल होने पर पीड़ा का अनुभव करते हैं वैसे ही ये भी।

कालान्तर में यही नामू नामदेव के नाम से प्रसिद्ध हुआ।



(5) श्वेत शिशु हाथी

बात उस समय की है जब बनारस में राजा ब्रह्मदत्त राज करता था। वहां पांच सौ बढ़ई रहते थे। वे नौका से नदी पार करके जंगल में मकान बनाने वाली इमारती काष्ठ खण्डों को काटने के लिए जाते। काष्ठ खंड काट लेने के बाद वे उन्हें एक मंजिले मकानों के उपयुक्त तैयार करते। वहीं उन पर खंभों के निमित्त निशान लगाते। तब वे उन शहतीरों को नदी पर ले जाते। जब नौका भर जाती तो वे शहर में आते और भवन बनाने के इच्छुक लोगों को शहतीर बेच देते। पैसे मिल जाने पर वे फिर भवन निर्माण हेतु काष्ठ खण्डों को काटने के लिए उसी जगह पहुंच जाते।

इस प्रकार अपनी आजीविका कमाते हुए एक बार उन्होंने लकड़कोट बना कर डेरा डाल लिया। उनसे थोड़ी दूरी पर ही बबूल की लकड़ी की एक बड़ी सी किरच पर एक हाथी का पांव पड़ गया। किरच उसके पांव को चीरती हुई अन्दर तक धंस गई। इससे उसे बहुत पीड़ा होने लगी। क्योंकि पांव में जलन होने लगी थी और पांव पक गयी थी। बिचारे हाथी का दर्द से बुरा हाल था। एक दिन जब उसने लकड़ी के कटने की आवाज सुनी तो उसने सोचा, 'अगर मैं इन बढ़इयों के पास जाऊं तो शायद मुझे कुछ आराम मिल जाए।' और वह तीन टांगों पर लंगड़ाता हुआ उस दिशा की ओर चल पड़ा और उनके समीप जा कर रुक गया।

बढ़इयों ने जैसे ही उसका सूजा हुआ पांव और उसमें धंसी हुई बड़ी सी किरच देखी तो उन्होंने तेज कुल्हाड़ी से किरच को चारों ओर से काट कर और उसके गिर्द रस्सी लपेट कर उसे खींचकर निकाला। तब उन्होंने घाव में से पीब साफ की। उसे गर्म पानी से धोया उस पर जड़ी बूटी का लेप किया। कुछ ही समय बाद घाव ठीक हो गया।

अब हाथी ठीक हो गया तो उसने सोचा 'मेरी जिन्दगी इन बढ़इयों ने बचाई है। प्रतिदान में इन्हें कुछ देना चाहिए।'

उस दिन के बाद वह हाथी वनों को समूल उखाड़ने में उन लोगों की सहायता करता और जब वृक्ष काट लिए जाते तो वह उन्हें इकट्ठा करता। उनकी कुल्हाड़ियां और उनके सामान को अपनी सूंड में लपेट कर ले आता। भोजन के वक्त पांच सौ बढ़इयों में से प्रत्येक उसे एक एक ग्रास देता।

इस हाथी का एक बेटा था—बिल्कुल श्वेत—एक राजसी शिशु

होगा। उसने सोचा, 'मैं बूढ़ा हो चुका हूं क्या न मैं इसे इनके काम के लिए इन्हें सौंप दूं, और स्वयं यहां से चला जाऊं।

इस प्रकार संकल्प करके और उन लोगों को बताए बिना वह जंगल में गया। वहां से अपने बच्चे को साथ ले आया और उन लोगों से कहा, 'यह शिशु हाथी मेरा बेटा है। आप लोगों ने मेरे जीवन की रक्षा की है इसलिए मैं इसे बतौर चिकित्सक की फीस के आपको सौंपता हूं। आज के बाद से यह आपकी सेवा करेगा। अपने पुत्र को संबोधित करते हुए उसने कहा आज से तुम इन लोगों का वह सारा काम करना जो मैं करता था।"

इस प्रकार उसने अपना बेटा उन लोगों को सौंप दिया और जंगल में गुम हो गया।

उस दिन से शिशु हाथी उन लोगों के आदेशों का पालन करता। जो कुछ उसे करने के लिए कहा जाता वह करता और वे लोग उसे भोजन देते। जब काम खत्म हो जाता तो वह नदी की ओर चला जाता, वहां तैरता रहता और फिर वापस आ जाता। बढ़इयों के बच्चे उसकी सूंड, पूंछ और टांगों पर चढ़ जाते, उसके साथ धरती पर और जल में क्रीडा करते।

बनारस के राजा ने जब इस श्वेत हाथी के बारे में सुना और चूंकि श्वेत हाथी मिलने दुर्लभ हैं उसकी इच्छा हुई कि इस हाथी को प्राप्त किया जाए। इसलिए वह अपने मंत्रियों सहित नौकाओं में बैठ कर बढ़इयों के गांव में आया। उस समय हाथी नदी में क्रीडारत था जब उसने ढोल-नगाड़ों की आवाज सुनी तो वह दौड़ कर बढ़इयों के पास आ गया। बढ़ई राजा के पास आए और उन्होंने कहा "महामहिम! यदि केवल लकड़ी का प्रश्न था तो आप को यहां चल कर आने की क्या आवश्यकता थी? क्या इसके लिए इतना काफी न होता कि किसी को भेज देते?"

राजा ने उत्तर दिया, 'मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि मैं लकड़ी के लिए नहीं बल्कि इस हाथी के लिए आया हूं। उन लोगों ने कहा, महामहिम! आप प्रसन्नतापूर्वक उसे स्वीकार करें और अपने साथ ले जाएं'।

लेकिन शिशु हाथी हिला तक नहीं।

राजा ने उसे कहा, 'तुम मुझ से क्या चाहते हो? हाथी ने उत्तर दिया, मेरे स्वामी, आप आदेश दें कि मेरा मूल्य बढ़इयों को दे दिया जाए।"

यह ठीक है ' राजा न कहा और अपन लागा का आदेश दिया कि वे हाथी की सूड से लेकर पूछ तक लाखा रुपयो का ढेर लगा द।

पर इस पर भी हाथी इनके साथ चलने को तयार न हुआ।

तब राजा ने आदेश दिया कि प्रत्येक बढई को और उन की पत्नियो को अपनी वेश भूषा तैयार करने के लिए कपडे दिए जाए तथा उनके बच्चो का विशेष उपहार के तौर पर वस्त्र दिए जाए जो उसके साथ खेलते रहे ह। तब हाथी चलने के लिए तैयार हो गया। राजा के साथ जाता हुआ वह बार-बार मुडकर बढइया, उनकी पत्नियो और बच्चो को देखता रहा।

राजा उसे शहर में ले आया। सारे शहर और हाथियो के रहने के स्थान को अच्छी तरह से सजाया गया। शिशु हाथी को सुदर झालरो से सजाया गया था। राजा ने तब उसका अभिषेक किया और उसे केवल अपनी सवारी के लिए अलग रखा। राजा ने उसके साथ सचमुच एक साथी का सा व्यवहार किया।

राजा को जब से हाथी की प्राप्ति हुई थी, तब से वह भारतवप की सपूण शक्ति का स्वामी बन गया था। कालातर मे राजा की बडी रानी के गभ से पुत्र के रूप म बोधिसत्व ने जम लेना था। लेकिन राजा पुत्र जम से पूव ही मर गया। यदि हाथी को इस बात का पता चल जाता कि राजा मर गया है तो उसका हृदय तत्काल टूट जाता। इसलिए किसी न उस यह दुखद समाचार नही सुनाया।

पडौसी राजा कौशल नरेश न जब यह समाचार सुना तो उसने कहा देश नेतृत्वहीन है", इसलिए उसने विशाल सेना ले कर राजधानी का घेर लिया। नागरिका ने द्वार बद कर लिए और यह सन्देश कौशल नरेश को भेजा, हम राजा क उत्तराधिकारी के जम की प्रतीक्षा कर रहे ह। यदि सात दिन के अदर राजकुमार का जम हा गया तो हम तुम्हारे साथ युद्ध करेगे और यदि राजकुमार का जम न हुआ तो हम राज्य आपका दे देगे। अत सात दिन के बाद आना। कौशल नरेश इस बात पर सहमत हा गया।

सातवें दिन राजकुमार का जम हुआ और उस दिन से नागरिक कौशल नरेश से युद्ध करने लगे। लेकिन चूकि युद्ध म उनका कोई सेनापति नही था इसलिए उनकी सेनाओ को महान होने के बावजूद, धीरे धीरे पीछे हटना पडा।



इस स्थिति को देखते हुए मंत्रिया ने रानी से कहा "अगर हम इसी तरह पीछे हटते गए तो हमें डर है कि हमारी सेना पराजित हो जाएगी। राजा का मित्र श्वेत हाथी यह नहीं जानता कि राजा मर गया है और न ही वह यह जानता है कि पुत्र का जन्म हुआ है, न ही यह कि कौशल नरेश ने हमारे विरुद्ध युद्ध छेड़ा हुआ है। उसे यह सब बता देना चाहिए।'

रानी सहमत हो गई। राजकुमार को राजसी वेषभूषा में, रेशमी गद्दी पर बठा दिया गया। तब रानी अपने मंत्रिया सहित महल से निकल कर हाथियों के रहने के स्थान पर आई और नन्हें राजकुमार को श्वेत हाथी के चरणों में रख दिया और कहा, "महोदय, आपके मित्र का स्वर्गवास हो चुका है। हमने आपको यह तथ्य नहीं बताया क्योंकि हमें डर था कि यह खबर सुनकर कहीं आपका दिल न टूट जाए। यह आपके मित्र का बेटा है। कौशल नरेश ने नगर को घेर लिया है और मेरे पुत्र के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया है। हमारी सेना हार रही है या तो मेरे पुत्र को मार दो या फिर उसके लिए राज्य का पुनः प्राप्त करो।

तब हाथी ने नन्हें राजकुमार को अपनी सूंड से सहलाया और अपने माथे तक उसे उठाया। वह राजा के वियोग में बहुत रोया। तब उस नन्हे राजकुमार को रानी की गोद में रखते हुए बोला, "मैं कौशल नरेश को पकड़ूंगा" और यह कह कर अपने स्थान से बाहर आ गया।

मंत्रियों ने तब उसे अस्त्र शस्त्रों तथा आभूषणों से विभूषित किया। अब वे शहर के द्वार खोल कर बाहर आ गए। हाथी दौड़ कर शहर से बाहर निकला और अपने ऊंचे गर्जन से शत्रु की सेना को भयभीत करता हुआ उनके डेरे पर टूट पड़ा और उसे तितर बितर कर दिया।

तब वह कौशल नरेश को चोटी से पकड़ कर खींचता हुआ लाया और उसे नन्हें राजकुमार के सामने पटक दिया। बहुत से लोग राजा को मारने के लिए दौड़े परन्तु हाथी ने उन्हें मना करते हुए राजा से कहा आगे से सावधान रहना और यह समझना कि हमारा राजकुमार एक नन्हा सा बालक है।'

इस प्रकार चेतावनी देकर उसे मुक्त कर दिया। उस दिन से भारतवर्ष की समस्त शक्ति बोधिसत्व के हाथ में रही और कोई उसके सामने सिर न उठा सका। सातवें वर्ष के अन्त में बोधिसत्व का राजा के रूप में अभिषेक हुआ। जीवनभर न्यायपूर्वक राज्य करने के बाद उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई।

MGIPF—774 DPD/84—4 9-84—3000